Andher Nagri

अन्धेर नगरी

Andher Nagri

Good novel

ANDHER NAGRI

Manmathanath Gupta

मन्मथनाथ गुप्त

Manmathanath Gupta

Price 3/-

Publisher

Pragati Prakashan

प्र ग ति प्र का श न

Very Good Novel

प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स १४–डी० फ़ीरोज़शाह रोड, नई दिल्ली।

नवीन प्रेस, दिल्ली।

मूल्य तीन रुपये

एक

सन्तोषकुमार ने जब मैट्रिक पास किया, तभी से उसके पिताजी उसके पीछे पड़ गये कि वह कुछ काम-काज कर ले। उसके घर की हालत वाकई बहुत खराब थी। घर में एक वही लड़का था। बाकी सब लड़कियां थीं। एक बहन की तो जैसे-तैसे शादी हो चुकी थी पर अभी दो और बहनें थीं। पहली बहन की शादी में ही घर की सारी पूँजी, वह थी ही कितनी, समाप्त हो चुकी थी। पिताजी मुनीमी से जो कुछ कमाते थे, उससे बहुत मुश्किल से घर का खर्च चलता था। खर्च चलता इसलिए था कि सन्तोषकुमार की मां सत्यवती बहुत ही कुशल गृहिणी थी। जहां अधेला का खर्च है, वहां वह दुकड़ा से काम निकालने की कोशिश करती थी।

पर सन्तोषकुमार के मन में तरह-तरह की उमंगें थीं, उसने मैट्रिक से ही सरस्वती देवी से विदा लेना स्वीकार न किया। पिता-पुत्र में इस पर बड़ी चखचख रही, यहां तक कि पिता ने पुत्र को स्वार्थी और धोखेबाज़ कहा, पर सन्तोषकुमार ने अपने

सामने जो लक्ष्य बना लिया था कि वह कम-से-कम बी० ए० तक पढ़ेगा, वह उससे विचलित नहीं हुआ। मां बीच में पड़ी, यह तय हुआ कि अच्छी बात है, यदि सन्तोष घर से खर्च बिना लिए आगेकी पढ़ाई जारी रख सकता है तो पढ़े। पिताजी ने फिर भी इस समझौते को स्वीकार नहीं किया, और यह कहकर सारी बात पर अपनी छाप लगा दी कि मैं यही समझूंगा कि मेरा कोई लड़का पैदा ही नहीं हुआ।

इतनी बाधायें होते हुए भी सन्तोषकुमार घर से निकल पड़ा, और मित्रों की सहायता से आगे की समस्याओं को हल करने के लिए अग्रसर हुआ। एक मित्र बनारस में रहते थे, वह वहीं पहुंच गया। सुना था कि वहां कालेज की पढ़ाई सबसे सस्ती है। वहां उसके मित्र ने उसको दो-तीन ट्यूशन दिला दिये, और उसकी पढ़ाई जारी हो गई। अवश्य पढ़ाई के सम्बन्ध में उसके मनमें जो धारणा थी वह पूरी न हो सकी। सारा समय तो ट्यूशनों में लग जाता था, इसलिए अपने पढ़ने के लिए उसे बहुत कम समय मिलता था। पर वह मेधावी था, और सफलतापूर्वक पढ़ता चला गया।

उसने घरवालों को अपना पता दे दिया। फिर भी उसके पिता उसे कोई पत्र नहीं लिखते थे, पर माता और पुत्र में पत्र-व्यवहार रहता था। इस पत्र-व्यवहार से उसे कोई विशेष खुशी नहीं होती थी, क्योंकि प्रत्येक पत्र में कहीं खर्च का रोना, कहीं उसकी बहनों की शादी का रोना यही सब रहता था। साथ-साथ बराबर यह भी रहता था कि उसके पिता का स्वास्थ्य गिर रहा है। इन पत्रों को पढ़कर उसका मन निराशा से भर जाता था, और उसके सामने भविष्य की अन्धकारमय झलक आ जाती थी, जो प्रिय नहीं मालूम होती थी। फिर भी वह उत्साह के साथ अपनी ट्यूशनों पर जाता था, और पढ़ाई जारी रखता था। उस

ने अपने मन में यों सोच रखा था कि यों भी आफत है त्यों भी आफत है, फिर वह क्यों न अपने मन की करे। एक मैट्रिक पास क्या कमा सकता था, जो कमाता उससे घर का कोई विशेष बनता-बिगड़ता, ऐसा तो नहीं मालूम पड़ता था। जिस तरह लोग दहेज मांगते थे, उससे यह तो अकल्पनीय था कि उसकी कमाई से बहनों की शादी के सम्बन्ध में कुछ समाधान होता। इन्हीं बातों को सोचकर वह और भी मन से पढ़ाई में लग जाता था। फिर भी बी० ए० पास होने से कुछ तो सुविधा रहेगी।

जब हर बार महीने के शुरू में ट्यूशनों को तनख्वाह मिलती थी, तो वह यह तय करता था कि कुछ नहीं तो पांच रुपये बचाकर मां को जरूर भेज देगा, क्योंकि मां के हाथों में जाकर ये पांच रुपये पन्द्रह का काम देंगे। पर कुछ ऐसे खर्च पड़ते जा रहे थे कि वह अपनी इस इच्छा को कभी पूरी नहीं कर पाया। महीने की पन्द्रह तारीख तक बिलकुल हाथ खाली-सा हो जाता था, और महीने के अन्त तक तो दिन में सितारे देखने की नौबत आ जाती थी। उसने अन्त में यह तय कर लिया कि अभी वह कुछ नहीं भेजेगा, जब बी० ए० पास करके नौकरी करेगा, तब एकदम से सारी क्षतिपूर्ति कर देगा। कई बार पत्र पाकर वह यह भी सोचता था कि घर के लिए वह एक ट्यूशन और कर ले तो कैसा रहे। पर हिसाब लगाकर जब देखता था तो मालूम होता था कि समय ही नहीं है। सवेरे सात से आठ तक एक ट्यूशन, फिर जैसे-तैसे खाना बनाकर, अधिकांश दिनों में खिचड़ी खाकर कालेज का रास्ता पकड़ता। इसी प्रकार कालेज से लौट कर फिर शाम को डेढ़ घंटे का एक ट्यूशन, खाना पकाना, और साथ ही अपनी पढ़ाई। नहीं, इस दशा में कुछ होना असंभव था, हां यदि उसके पास कोई साइकिल होती तो सर्वत्र जाने-आने में जो समय लगता है उसमें से कुछ समय बच सकता था। पर

साइकिल कहां से आती ? डेढ़ सौ रुपये तो उसके लिये बहुत मुश्किल थे।

इसी प्रकार उसने अन्त में घर को सहायता देने का इरादा छोड़ दिया। इन दिनों जो पत्र आते थे, उनको वह ध्यान से नहीं पढ़ता था। क्या पढ़े, ब्यौरे में जाने पर केवल वे ही बातें मिलती थीं। इधर जीजा बीमार थे, और उनकी नौकरी छूट गई थी। बड़ी बहन को बच्चा होनेवाला था, और वह आकर मायके में ही थी। मां के पत्र बड़े करुण हो रहे थे। अब तो वह पत्रों में सारी समस्याओं से घबराकर जब देखो तब अपनी मृत्यु की ही कामना करती थी। पिता कुछ-कुछ बीमार तो थे ही।

सन्तोषकुमार की पढ़ाई का अन्तिम साल था, और उसने इसी में भलाई समझी कि सब तरफ से आंख बन्द कर ले। पत्रों के उत्तर में वह विशेष कुछ नहीं लिखता था। बस इतना ही लिख देता था कि परीक्षा के इतने दिन हैं, मानो परीक्षा होते ही सारी समस्या हल हो जायगी। पता नहीं उसके सुझावों के फलस्वरूप या डिग्री के सम्बन्ध में गलत धारणाओं के कारण उधर से भी इसी प्रकार के पत्र आ रहे थे कि वे भी दिन गिन रहे हैं। ऐन परीक्षा के पहले मां ने सन्तोषकुमार को एक पत्र लिखा जिसमें यह लिखा कि वह निश्चिन्त होकर अपनी पढ़ाई करे, वह इस बीच में सब संभाल लेगी। बड़ी बहन को एक लड़का पैदा हुआ था, और पिता का स्वास्थ्य इधर मामूली से अधिक बिगड़ा नहीं था। मां ने यह भी लिखा था कि यद्यपि सन्तोषकुमार के पिता ऊपर उसके सम्बन्ध में उदासीन बने रहते हैं, तो भी भीतर से उनको बड़ी दिलचस्पी थी, और कसबे के मन्दिर में जाकर उसके लिए बड़ी प्रार्थना करते थे। यह पढ़कर न मालूम क्यों सन्तोष-कुमार को बड़ी खुशी हुई, और अब तक उसके मन में पिता के विरुद्ध जो एकत्रित असन्तोष था, वह दूर हो गया।

संतोषकुमार परीक्षा में पास हो गया, पर उसे कोई डिवीजन नहीं मिला। वह डिवीजन की आशा भी नहीं करता था क्योंकि जब सारा समय ट्यूशनों में और खाना पकाने में जाता था, तो वह पास होने से अधिक की आशा नहीं करता था। उसने यथा-रीति पास होने की खबर घर में भेज दी, और उसी दिन से नौकरी की तलाश करने लगा। मित्रों को पहले ही से कह रखा था, पर मित्रों ने इस सम्बन्ध में उसकी कोई सहायता नहीं की। तब वह खुद ही दौड़-धूप करने लगा।

दो

पर जहां भी जाता, वहीं उसे निराशा का सामना होता। किसी फर्म में जाता तो वे लोग उसे ग्राहक समझकर बड़े तपाक से बुलाते, पर ज्योंही वह अपने आने का कारण बतला देता, त्योंही सब लोगों का चेहरा बदल जाता, और जिसके मुंह में जो बात आती, वह वही बात कहता। ऐसे लोगों को उपदेश देना सब लोग अपना हक समझते हैं, और कोई भी व्यक्ति अपने इस हक का उपयोग करने में चूकता नहीं था। कोई कहता नौकरी से तो यह अच्छा हैं कि खोञ्चा लगाया जाय, कोई दार्शनिक तरीके से यह कहता कि लोग नौकरी के पीछे दौड़ते हैं, इसीलिए देश की उन्नति नहीं होती, इत्यादि इत्यादि।

लोग रुखाई से भी पेश आते थे, और उसे ऐसा अनुभव हुआ कि उसे लोग एक प्रकार का भिखमंगा नहीं तो आधा भिखमंगा जरूर समझते हैं, इससे उसे बड़ी ग्लानि हुई, पर क्या करता, मजबूर था। मन मारकर भी नौकरी के पीछे घूमता रहा। उसने बुद्धिमानी इतनी की थी कि अपनी ट्यूशनें कायम रखी

थीं, इसीलिए रोज़ रात को निराश होकर लौटने पर भी उसकी हालत फिर भी अच्छी ही रही।

उसने खबर लेकर देखा कि उसके सहपाठी अच्छी जगहों पर लग गये हैं। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि क्या बात है। उसने नौकरी खोजने में कोई कसर तो रखी नहीं। पूरा पता लिया तो मालूम हुआ कि उसके सफल-साथी उसकी तरह एक दिन भी दर-दर नहीं घूमे, और बैठे-बिठाये उनको नौकरी मिल गई। दो-चार के क्षेत्र में तो यह भी बात थी कि उन्होंने अच्छे नम्बरों से पास किया था, पर जब अधिक छानबीन की तो पता लगा कि अधिकांश तो उसी की तरह पास भर हुए थे, केवल सिफारिशों का ज़ोर था और वे नौकर हो गए थे। उसकी सिफारिश कौन करता? उसके पिता एक साधारण मुनीम-मात्र थे। यदि वह मुनीमी की लाइन में होता तो संभव है कि वे कुछ कर सकते थे, पर वह तो बी० ए० पास था, और यह स्वप्न देखा करता था कि वह कहीं ऐसी जगह नौकर होगा जहाँ उसे कुर्सी, मेज, फैन, बिजली की घंटी आदि प्राप्त होगी। उसके पिता तो ज़मीन पर बैठकर गद्दी के सामने बही लिखा करते थे। यह उसे बिलकुल पसन्द नहीं था। उसे जो शिक्षा मिली थी उसी के कारण उसकी धारणायें इस प्रकार बन गई थीं।

दो-तीन महीने तक दर-दर की ठोकरें खाने के बाद भी उसे नौकरी नहीं मिली। इस बीच में वह एक-आध बार घर भी जा चुका था, और पिता को सारी बातें बता चुका था। पिताजी ने कहा—"दो-चार ट्यूशनें और कर लो, साथ-साथ नौकरी खोजते रहो।"

उसे यह बात पसन्द नहीं आई। उसके मन के सामने जो स्वप्न था, उसके अनुसार ट्यूशन कुली के काम से कुछ ही अच्छा था। उसे यह मालूम था कि कम-से-कम काशी में कुली क्लर्कों

से अधिक पैसे कमाते हैं, फिर भी वह अपनी धारणाओं से मजबूर था। ट्यूशन तो वह मजबूरी से करता था।

जब और दो महीने कोशिश करने के बाद भी उसे कोई नौकरी नहीं मिली, तो उसने मजबूरी से एक ट्यूशन और कर ली, और इस ट्यूशन का पैसा घर में देने लगा। साथ-साथ नौकरी भी खोजता रहा। अब वह फर्मों में जाने के बजाय पुस्तकालय में जाकर सब अखबारों के 'वान्टेड' कालम देखा करता था, और अपने नोटबुक में रोज़ चार-पांच पते नोट करके लाता था। रात को बैठकर इन पतों पर नौकरी के लिए दरख्वास्तें लिखता था। यद्यपि इन दरख्वासस्तों में से अब तक एक का भी उत्तर नहीं आया था, फिर भी वह मुस्तैदी से करीब-करीब निष्काम-भाव से दरख्वास्तें भेजता रहता था।

इसी प्रकार कुछ दिन चलता रहा। एक दिन रात को जब वह अपनी कोठरी में लौट आया तो उसने देखा कि एक पत्र पड़ा है। पहले तो उसने समझा कि पिताजी का पत्र होगा, और इन दिनों चूंकि उनके पत्रों में केवल उपदेश रहते थे, इसलिए उसने अवज्ञा से उस पत्र को अपनी खाट पर रख दिया कि यथासमय पढ़ेगा। वह यथारीति नोटबुक खोलकर दरख्वास्तें लिखने के लिए तैयार हो गया। इतने में उसका ध्यान फिर उस पत्र की ओर गया, तो उसने देखा कि पता टाइप किया हुआ है। कांपते हाथों से उसने उस पत्र को उठा लिया, और जल्दी से लिफाफा फाड़कर उस पत्र को पढ़ गया। हां ठीक तो है, एक जगह से उसके पत्र का उत्तर आया था, और उसमें कहा गया था कि वह अगले दिन दस बजे मिले, फिर सब बातें तय होंगी।

उसने पत्र को बार-बार पढ़ा, और हर बार उसे ऐसा मालूम पड़ा कि उसे पहले से कुछ अधिक समझ में आ रहा है। यदि उसे इस समय कोई पूछता कि यह पत्र उसे अधिक प्रिय है या

बी०ए० पास का उस के पास जो सर्टीफिकेट था, वह अधिक प्रिय है,तो वह निश्चित रूप से इसी पत्र को अधिक प्रिय बताता। इस बीच में वह समझ चुका था कि वह अपनी कल्पना में बी० ए० का जो मूल्य समझता था, उसका वह मूल्य तो था ही नहीं, कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता था कि उसका कुछ मूल्य है ही नहीं। सबसे अधिक मूल्य तो उसे सिफारिशों का ही मालूम पड़ा, नहीं तो उसके साथ के कई एफ० ए० पास मजे में अच्छे काम पर हैं, और वह सबेरे से शाम तक कोल्हू के बैल की तरह लड़को को वही वालगा, डैन्यूब, रेखागणित का ए० बी० सी० और व्याकरण की गुत्थियां सुलझाता रहता है। अभी उसके जीवन का प्रारंभ ही था, पर उसे बहुत कड़वे अनुभव हुए थे। उसे कुछ-कुछ ऐसा विश्वास-सा हो चला था कि सिफारिशों के बगैर वह कुछ भी नहीं कर सकता है, और न उसे कोई ढंग की नौकरी ही मिल सकती है।

इसलिये उसे जब यह पत्र मिला तो बड़ी खुशी हुई, क्योंकि इस पत्र से उसके मनोजगत के वे काले-काले निराशा के द्योतक बादल उड़ तो गये, और उसे सूर्य की दिव्य-लालिमा दिखाई तो पड़ी। वह बहुत ही खुश हुआ, और फिर मन-ही-मन सारी तैयारी करने लगा। उसके पास एक बढ़िया-सा सूट था, उसने उसे निकाला और सवेरे के लिए बाकी सारी तैयारियां कर लीं।

अगले दिन वह रोज़ से सवेरे उठा, और सबसे पहले उसने यह तय कर लिया कि उसे सवेरे वाले ट्यूशन में जाना नहीं है। ट्यूशनों के प्रति उसके मनमें जो घृणा थी, वह मानो इस प्रकार पहला मौका पाते ही प्रगट हो गई। पर जब ऐन ट्यूशन का समय आ गया, और घड़ी में सात बज गये, तब वह एकाएक चंचल हो गया। कहीं नौकरी न लगी तो? उसका कलेजा धक से हो गया। वह इस अप्रिय विचार को अपने मन में आने

नहीं देना चाहता था। उसे कुछ ऐसा विश्वास था कि जब बुलाया है तो अवश्य नौकरी मिलेगी। फिर भी मन नहीं माना। मन में कोई कहने लगा, यह तो ठीक है, पर नौकरी न मिली तो ? तब तो न इधर के रहोगे न उधरके रहोगे। इतने में उसके मन में यह विचार आया कि कोई वह ट्यूशन छोड़ने थोड़े ही जा रहा है, एक दिन नहीं गया तो कौन वड़ा भारी अनर्थ हो जायगा। उसने तो आज तक कभी अंझा नहीं किया। यदि एक दिन नहीं गया तो इससे क्या ? और अगर वहां जाकर देखेगा कि नौकरी नहीं ही लगी, तो फिर किसी और समय चला जायगा। आजकल कोई कालेज जाना थोड़े ही रहता है। लड़के के भी तो छुट्टी के दिन हैं।

उसने सैलून में जाकर बाल कटवाये। सैलून में तो खैर हमेशा बाल कटवाता था, पर आज उसने वहां वह बात की जो कभी नहीं की थी। उसने शैम्पू करवाया, और फिर घर पर लौटकर अच्छी तरह नहा-धोकर पास के एक टुटपुँजिया होटल में गया, और वहीं कलई उड़े हुए वर्तनों में खाना खाकर वह रवाना हो गया। स्थानीय एक फर्म में उसका बुलावा था। फर्म का नाम अमोलकचन्द काहनचन्द था। ढूँढते-ढूँढते वह ठीक दस बजे इस फर्म के दफ्तर में पहुँचा।

उसने देखा कि उसकी तरह और भी कई उम्मीदवार वहां पर पहले ही से एकत्र थे। थोड़ी ही देर में पता लगा कि सब उसी की तरह पत्र द्वारा बुलाये गये थे। इन उम्मीदवारों में प्रत्येक प्रत्येक को सन्देह की दृष्टि से देख रहा था, यद्यपि ऊपर से सभी लोग सभ्य बने हुए थे। कई तो बिलकुल चुप बैठे हुए थे, पर कई अपने बगलवाले से बातचीत तो क्या बातचीत की कोशिश कर रहे थे। कमरे का वातावरण ऐसा था कि मालूम हो रहा था कि कहीं पर कोई ऐसी बात है जिससे सांस रुक

रही थी। जब भी फर्म का कोई कर्मचारी आता था, तो सब लोग उसे देख कर खड़े हो जाते थे, यद्यपि असली बात यह थी कि कई बार ऐसे कर्मचारी आते थे जो इन उम्मीदवारों के द्वारा वांछित पद के निम्नतर पद पर थे। फिर उनमें से किसी का भी उम्मीदवार निर्वाचन से कोई सम्बन्ध नहीं था। सन्तोष-कुमार को कई बार यह व्यवहार अच्छा नहीं मालूम हुआ फिर भी वह सबकी देखादेखी कुर्सी से तीन-चौथाई उठकर बैठक करने की मुद्रा में तो हो ही जाता था। वह किसी से बात नहीं कर रहा था, पर पासवाले अब भी आपस में कोई बात करते तो वह उनकी बातों को ध्यान से सुनता था। इसी प्रकार बैठे-बैठे एक बज गया।

सभी उम्मीदवार जमुहाई ले रहे थे, और परेशान-से ज्ञात होते थे। घर से शायद सभी यह उम्मीद लेकर चले थे कि उन्हें नौकरी अवश्य मिलेगी, पर यहां आकर जो इतने उम्मीदवार देखे तो सब के आत्मविश्वास क्षीण हो गये, और अब एक बजे तक प्रतीक्षा करने के बाद तो सभी का बुरा हाल हो रहा था। सब के चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगी थीं। लोगों की मानसिक अवस्था इस प्रकार हो गई थी कि अब बस कोई आकर इतना ही कह दे कि आप लोग चले जायं तो वे बिना कुछ प्रतिवाद किये ही चल देते। आखिर इस तरह तने हुए स्नायु की हालत में कोई व्यक्ति अनिर्दिष्ट काल तक तो रह नहीं सकता। कइयों के तो सिर में दर्द हो गया था।

जब दो का घंटा बजा, तब उम्मीदवारों में से एक ने अपने बगलवाले से कुछ चिल्लाकर कहा—"अजी सब झोल है।" कहकर उसने सब उम्मीदवारों को ध्यान से देखा।

बगलवाले ने पूछा—"क्या ? क्या झोल है ?"

प्रथम व्यक्ति ने कहा—"मैं तो वर्षों से यही पापड़ बेल रहा

हूँ। उम्मीदवार तो यों ही बुलाये जाते हैं, नौकरी के लिये आदमी तो पहले से ही चुना जाता है।"

बगलवाले ने कहा—"तो हम लोग फजूल बुलाये गये ?"

उस व्यक्ति ने हाजिरजवाबी के साथ कहा—"फजूल क्यों बुलाये गये ? आपके लिये भले ही फजूल हो, पर बुलानेवाले के लिये तो यह बात फजूल नहीं है। यह दर्ज किया जायगा कि इतने लोग बुलाये गये, उनका इन्टरव्यू लिया गया, उन्हें नम्बर दिया गया, और फिर सब आये हुए लोगों में जो सब से योग्य मालूम पड़ा, उसे नौकरी दी गई।"

सन्तोषकुमार बीच में बोल पड़ा—"तो हम लोगों का इन्टरव्यू तो होगा न ?"

उस व्यक्ति ने कहा—"हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। यदि वे अपने कागजात में यह दिखला दें कि इन्टरव्यू हुआ, चाहे इन्टरव्यू न भी हुआ हो, तो उनका कौन क्या बिगाड़ सकता है ? कोई हम लोग पार्लियामेंट के मेम्बर थोड़े ही हैं कि प्रश्न पूछ लेंगे।" कहकर वह व्यक्ति एक कड़वी हंसी हंसा।

सन्तोषकुमार ने पूछा—"तो यह सारे विज्ञापन इसी प्रकार के होते हैं ?"

उस व्यक्ति ने कहा—"यही समझ लीजिये। हां अगर कोई रिश्तेदार उस नौकरी के कतई काबिल नहीं निकला, तब बाहरी उम्मीदवारों की पूछ होती है, और तब तो नौकरी देनेवाला यही कोशिश करता है कि अच्छे-से-अच्छे आदमी को लें।

कुछ देर तक सब उम्मीदवार चुप रहे मानो उन्हें इस प्रकार जो ज्ञान प्राप्त हुआ था, वे उसे जुगाली करते हों। सन्तोष कुमार अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे इन्हीं बातों को सोच रहा था। नौकरी के जीवन में आरम्भ में यह अच्छा तजर्बा रहा। वह अब यही सोच रहा था कि इधर तो खतम सा ही है, सबेरे

जिस ट्यूशन में झंझा किया, यहां से सीधे वहीं चलना चाहिये। और फिर रोज की तरह लाइब्रेरी। यह सोचते हुए उसे कुछ जोश नहीं मालूम हो रहा था। पहले से कहीं तीव्र रूप में उसे ऐसा मालूम हो रहा था जैसे वह एक अन्ध भाग्य के हाथों की कठपुतली मात्र हो। इस समाज के सारे नियम अजीब ही हैं। पढ़ने की इच्छा होते हुए पढ़ने में समर्थ न होना, फिर यदि पढ़े भी तो इस प्रकार पढ़े, मानों बेगार टाल दिया हो, और अब यह आफत। सन्तोषकुमार जिन बातों को सोच रहा था, शायद सभी लोग घुमा-फिराकर उन्हीं बातों को सोच रहे थे। कइयों के चेहरों को देखने से तो यही पता लगता था जैसे उनको नौकरी की जरूरत सन्तोषकुमार से कहीं अधिक थी। सन्तोष-कुमार तो फिर भी अच्छा था कि वह कुछ ट्यूशन कर लेता था, और उसे रूखा-सूखा कुछ मिल जाता था।

तीन

जब तीन की घण्टी बज गई, तब सब उम्मीदवारों की हालत ऐसी हो चुकी थी, जैसे उन पर घण्टों मार पड़ी हो। सब के शरीर में दर्द मालूम हो रहा था। कइयों का तो सिरदर्द से बुरा हाल था। एकमात्र वही व्यक्ति जिसने अपने सम्बन्ध में यह बताया था कि वह वर्षों से यही पापड़ बेल रहा है, स्वस्थ तथा हृष्टचित्त मालूम देता था। उसने तो इस बीच में एक नींद भी ले ली थी। उसका सारा बर्ताव ऐसे था मानो निष्काम-भाव से एक कर्तव्य को अदा कर रहा है। उसने अपनी असफलता को बिलकुल स्वाभाविक और अनिवार्य मान लिया था, केवल यही नहीं दूसरे ऐसा नहीं कर पा रहे थे, इसलिये वह उनको कुछ घृणा की दृष्टि से देख रहा था। अब वह किसी से बोल नहीं रहा था न किसी से आंख मिला रहा था।

तीन बजते ही उसने कुछ सावधान भाव धारण किया, क्योंकि उसका तजर्बा यह था कि यदि इन्टरव्यू होता है तो वह या तो पूरा घण्टा बजने पर शुरू होता है या अद्धा पर। अबकी

बार उसका अनुमान ठीक निकला। एक कर्मचारी जल्दी से उस कमरे में आया, और बोला—"खानचन्द किसका नाम है ? चलिये।"

सब उम्मीदवार एकदम चौकन्ने हो गये। तो आखिर शुरू हो गया। खानचन्द नामधारी भाग्यवान व्यक्ति उठा, और आत्मसमर्पण के भाव से उस व्यक्ति के साथ इस प्रकार से चला जैसे बकरा अपने जल्लाद के साथ जाता है। यदि खानचंद को पूछा जाता तो वह अवश्य कहता कि उसे थोड़ा-सा समय मिलना चाहिये जिससे कि वह तैयार हो सके। खैर खानचन्द की हानि सबके लिये लाभ-साबित हुई। सब लोगों ने अपने कपड़े ठीक कर लिये। दो-एक व्यक्ति ने चुपके से जेब से रूमाल निकालकर मुंह पोंछने के बाद उससे जूता पोंछ लिया। उस व्यक्ति ने जो सबसे अधिक तजर्बेकार था, अपनी जेब से एक छोटा-सा शीशा-कंघा निकाला, और अपने बाल आदि ठीक किये। जब वह अपने बाल ठीक कर चुका तो दो-एक अन्य व्यक्तियों ने उससे शीशा मांगकर बाल आदि ठीक किये, सन्तोष-कुमार भी चाहता था कि वह भी शीशा देखकर अपने बाल ठीक करे, पर उसे शीशा मांगने की हिम्मत नहीं हुई। इसलिये शीशा के सहायता के बिना जितना हो सकता था, उसने अपने कपड़े, बाल आदि उतना ठीक कर लिया।

पहले व्यक्ति का इन्टरव्यू दो ही मिनट हुआ। उसे लौटकर उम्मीदवारों में आने नहीं दिया गया, और एक दूसरे दरवाजे से बाहर निकाल दिया गया। पर वह जिस दरवाजे से निकाल दिया गया, वह उम्मीदवारों के कमरे से दिखाई पड़ता था। एक-एक करके सब उम्मीदवार बुलाये जाने लगे। शीशे का मालिक बहुत-सी नौकरियों का असफल उम्मीदवार भी बुलाया गया, और वह यथारीति उस दरवाजे से निकल गया। दरवाजे

से निकलते समय उसने उम्मीदवारों के कमरे की तरफ एक गुणा का चिह्न बना दिया, और हंस कर बाहर चला गया।

सन्तोषकुमार का भी बुलावा आया। उसे जिस व्यक्ति के सामने पेश किया गया, वह देखने से एक सेठजी मालूम होते थे। आंखें बहुत ही चालाक मानो अन्दर तक पढ़ लेती हैं। सन्तोषकुमार ने उस व्यक्ति को करीब-करीब भक्तिभाव से हाथ जोड़कर नमस्ते किया। सेठजी इतने व्यस्त थे कि उसे बैठने के लिये भी नहीं बोले, और जिरह शुरू हो गई—"आपका विवाह हो चुका ?" कहकर पैनी दृष्टि से सन्तोषकुमार को देखा। यद्यपि इस प्रश्न से नौकरी का कोई सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता था, फिर भी नौकरीप्रार्थी को इस सम्बन्ध में कुछ कहने का हक नहीं होता। वह तो इस मामले में एक वेश्या की तरह होता है जिसके साथ उसके शरीर का खरीददार किसी भी रूप में कहीं से प्रेम शुरू कर सकता है।

सन्तोषकुमार ने कहा—"नहीं।" फिर कुछ सोचकर बोला—"अभी तक तो छात्र ही था।"

सेठजी ने मानो उसके कहे हुए अन्तिम शब्दों को सुना ही नहीं, बोले—"आपके परिवार में और कौन है ?"

"पिताजी, माताजी और दो छोटी बहनें।"

"आपके पिताजी क्या करते हैं ?"

"मुनीम हैं।"

"मुनीमी में तो बहुत पैसा आता होगा।"

"जी नहीं, गुजारा भी नहीं होता, एक बड़ी बहन की शादी में ही घर पर कर्जा हो गया, अब छोटी बहनों की शादी कैसे होगी, यही पिताजी के सामने समस्या है। मुझ ही को सब-कुछ करना है।"

सेठजी इन ब्यौरों को सुनकर जैसे कुछ खुश हुए, बोले—"तो आपमें नौकरी करने की इच्छा है ?"

"जी हां, मैं इसीलिये आया हूं।"

सेठजी ने कुछ जवाब नहीं दिया। कुछ देर तक चुप रहे, फिर बोले—"आप कालेज में किन-किन संस्थाओं के सदस्य थे ?"

सन्तोषकुमार कुछ झिझका, पर तुरन्त ही बोला—"मैं किसी भी संस्था का सदस्य नहीं था। इतना समय ही कहां था ? ट्यूशन करता था तब पढ़ने का खर्च एकत्र कर पाता था।"

सेठजी चुप रहे। फिर बोले—"आप ईमानदारी से तो काम करेंगे न ? हमारे यहां तो यह मोटो है कि जिसका नमक खायें, उसके लिये जरूरत पड़ने पर जान दे दे। आप इसे मानते हैं न ?"

सन्तोषकुमार ने कहा—"जी हां, हमारे यहां तो धर्म का यह एक अंग है।" कह कर उसने करुण दृष्टि से सेठजी को देखा।

सेठजी बोले—"सब ऐसा ही कहते हैं, पर जरा-सी विपत्ति आने पर ही या जरा लाभ दिखाई पड़ने पर ही दगा कर जाते हैं।"

सन्तोषकुमार ने कुछ नहीं कहा। उसकी दृष्टि पहले से अधिक करुण हो गई। सेठजी ने अपने सामने के सिगरेट केस की तरफ इशारा करते हुए कहा—"आप सिगरेट पीते हैं ?"

"जी नहीं।"

"और कोई नशा ?"

"जी नहीं।"

सेठजी रुके, और बोले—"आप क्या हर समय सूट पहनते हैं ?" कहकर उन्होंने उसके सूट को परीक्षामूलक दृष्टि से देखा।

"जी नहीं, यह तो आज पहन लिया।" फिर सुधार कर बोला—"कभी-कभी पहनता हूं।"

सेठजी कुछ चिन्ता करने लगे, फिर बोले—"यों तो आदमी का हृदय ही सबसे बड़ी चीज है, पर कपड़े-लत्ते भी अपनी जगह पर बहुत जरूरी हैं। आप खद्दर नहीं पहनते ?"

"जी, कभी-कभी पहनता हूँ।"

सेठजी की बाछें खिल गईं। बोले—"खद्दर की साख अच्छी है। आप खद्दर पहनकर काम पर नहीं आ सकते ?"

"क्यों नहीं, जैसा आप कहेंगे ?"

"यों तो मैं खद्दर पहननेवालों को बिलकुल बेईमान समझता हूं। जो कभी-कभी खद्दर पहनते हैं, वे तो ठीक हैं, पर जो लोग हर समय खद्दर पहनते हैं, वे बहुत ही खतरनाक हैं।" कहकर सेठजी ने एक सिगरेट सुलगाया, सन्तोषकुमार से अब कुर्सी पर बैठने के लिए कहा, और बोले—"हमारा काम ऐसा है कि इसमें खद्दर पहनना जरूरी है। चूड़ीदार पायजामा, अचकन और गांधी टोपी। इनसे बहुत-सी बलाओं से बच सकते हैं ? समझ गये न ? और एक बात, उस बात को याद रखिये कि हमारी नौकरी में आपको पूरी वफादारी दिखानी पड़ेगी। सरकार पचास-पचास रुपये देकर लोगों को नौकर रखती है, और उन्हें जब चाहती है भेजकर कटवा-मरवा देती है, हमने इस मामले में सरकार का ही अनुकरण किया है। बिलकुल उसी तरह आपको काम करना पड़ेगा। उसी तरह हम आपका ख्याल भी रखेंगे। पर वफादारी में कमी कभी न आवे।"

सन्तोषकुमार ने सेठजी के व्याख्यान के पूरे मथितार्थ को नहीं समझा, वह तो इतने से ही खुश था कि उसे नौकरी मिल गई। उसे और आगे कुछ सोचने की न तो इच्छा थी और न सामर्थ्य। फिर वह युवक था। जोश से भरा हुआ था। बोला—

"आप चिन्ता न करें, मैं वैसा ही करूंगा जैसा मुझे करने के के लिए कहा जायगा।

सेठजी ने बिजली की घंटी बजाई और साथ-ही-साथ सन्तोषकुमार से कहा—आप कल सुबह आठ बजे आ जाइये।

बाहर से चपरासी ने आकर सलाम किया, और उसने सन्तोषकुमार से बाहर चलने के लिये इशारा किया। सन्तोषकुमार भी बाहर चला गया। निकलते ही दरवाजे से कुछ दूर पर उसे वही व्यक्ति जिसने अपने को बहुत अभिज्ञ बतलाया था दिखलाई पड़ा। उसने हंसते हुए उसका स्वागत किया और कहा—"इन्टूवालों में हो न ? हा हा हा हा"

सन्तोषकुमार ने कुछ झुंझलाहट के साथ उसे हां कहा, और आगे बढ़ गया। फिर मुड़कर भी नहीं देखा। वह व्यक्ति वहां पर उसी तरह खड़ा रहा। उसे यही आश्चर्य हो रहा था कि लोग असफल होकर इतने चिड़चिड़े क्यों हो जाते हैं ?

चार

सन्तोषकुमार के पिता बनवारीलाल को जब यह मालूम हो गया कि उसका लड़का नौकरी पर लग गया है, तो उसने पुरानी सब बातों को भुलाकर लोगों से विशेषकर अपने परिवारवालों से यह कहना शुरू किया—"देखा, मैं तो पहले से ही जानता था आखिर मेरा ही लड़का है, कहां तक नासमझ होगा।"

यों तो जिस दिन से सन्तोषकुमार ने बी० ए० पास कर लिया था, उसी दिन से वे उसकी शादी की बातचीत चला रहे थे, पर जब उसे नौकरी मिल गई, तब तो वे खुलकर मैदान में सामने आये। उनके कपड़ों में एक पुरानी रेशमी अचकन रखी हुई थी। कभी जवानी में बनवाई थी। उसे पहने हुए वर्षों हो गये थे, पर अब उन्होंने उसे निकलवा लिया, और यद्यपि वह अब उनके लिए बिलकुल फिट नहीं रह गई थी, तो भी उन्होंने बड़े चाव से उसे पहनना शुरू किया, और विशेषकर जब वे किसी से अपने लड़के की शादी के विषय में बातचीत करने जाते थे तो इसे अवश्य पहनते थे। अवश्य लड़के की शादी के

सिलसिले में वे लोगों से मिलते तो अपनी दो अविवाहित लड़कियों में से एक के लिए मन-ही-मन वर तजवीज़ करते जाते थे। यों तो उन लड़कियों की अच्छी शादी होने की गुंजाइश नहीं थी। पर बनवारीलाल अब यह सोचने लगे थे कि यदि वे लड़के को दहेज में इतनी रकम मार पावें कि दोनों लड़कियों की मन के मुताबिक शादी हो जाय, और साथ ही कुछ बच रहे तो अच्छा रहेगा। इसी उद्देश्य को लेकर वे घूमते-फिरते थे।

बनवारीलाल बी० ए० पास को जितना बड़ा समझते थे, वह भले ही उनके समय में उतना बड़ा रहा हो, पर इस समय बी० ए० पास लड़के बहुत अधिक थे। इसीलिए उनकी दाल गलती नहीं थी। सब लोग यही कह देते कि अजी बी० ए०, एम० ए० तो मारे-मारे फिरते हैं, लड़का करता क्या है। बुद्धिमान बनवारीलाल यह समझ गये थे कि अब लोगों की दृष्टि इसी बात पर अधिक है। भले ही लड़का अनपढ़ या करीब-करीब अनपढ़ होता, पर यदि उसकी आमदनी अच्छी होती तो शादी के बाजार में उसका भाव बढ़ा हुआ होता। मुनीमी के दिमाग से वे इस बात को भली भांति समझ गये, और इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि सन्तोषकुमार को नौकरी मिले। ज्योंही उसे नौकरी मिल गई, और इसको खबर उन्हें मिल गई, वे फिर बड़े जोर से दौड़ने लगे।

बिरादरी में सभी लोग बनवारीलाल को जानते थे, और जो नहीं जानते थे, वे भी जान जाते थे, एक मुनीम की हैसियत ही क्या होती है, विशेषकर एक कसबे के फर्म के मुनीम की। इसलिये यद्यपि बनवारीलाल अपनी अचकन का पूरा फायदा उठाते थे, और आवश्यकता से अधिक जोश से बोलते थे, फिर भी रोब कम पड़ता था। बनवारीलाल ने इस सम्बन्ध में भी विचार किया तो वे इधर भी संभल गये। पैतृक मकान में कई

जगह मरम्मत की जरूरत थी। उन्होंने फौरन इसकी मरम्मत करवाई, और जो-कुछ भी मामूली टीमटाम हो सकता था वह सब करवाया। स्त्री सत्यवती ने लड़कियों का नाम लेकर इस फजूलखर्ची का विरोध किया, पर बनवारीलाल बोले—"औरत ज़ात में बस यही मुश्किल है। कोई बात समझेगी नहीं और खामखाह उलझ पड़ेगी। मैं यह सब शान-शौकत इसलिये थोड़े ही कर रहा हूं कि मुझे कोई ब्याह करना है। ईश्वर तो पैसेवालों को ही पैसा देता है, कुछ ऐसा ही उनका नियम है। जब चारा नहीं डालोगे तो मछली कहां से फंसेगी। जो लोग चारे के खर्च का रोना रोते हैं, उनसे बढ़कर बेवकूफ कोई हो नहीं सकता। देखो तो क्या होता है, हां।"

पर सत्यवती को इन बातों से तसल्ली नहीं हुई, बोली—"लड़कियों के ब्याह के लिए जो सौ-दोसौ जोड़े थे, वह इस तरह खराब हो गये। अब आगे क्या होगा ईश्वर ही जाने। उधर लड़कियां बड़ी हो रही हैं, उनकी तरफ देखती हूं तो अन्न गले से नहीं उतरता।" कहकर सत्यवती ने आंचल से आँख पोंछ ली।

सचमुच बड़ी लड़की विमला की उम्र १७ से ऊपर जा चुकी थी, यद्यपि लोगों से यही कहा जाता था कि उसकी उम्र १५ साल की है। बनवारीलाल भी यह सब कर तो रहे थे, पर उन्हें मन में पूरा विश्वास नहीं था कि कुछ हो ही जायगा। वह एक तरह से जूआ खेल रहे थे। जब मुसीबत अधिक हो जाती है, तब मनुष्य में जुआड़ी मनोवृत्ति का उदय होता है। जब सत्यवती ने इस प्रकार से उनके कार्यों की आलोचना की, तो भीतर-ही भीतर सहम गये, वितर्क करने की इच्छा जाती रही, और वे वहां से उठकर चले गये। यद्यपि उन्होंने अभी औरत ज़ात को बुरा-भला कहा था, पर वे समझते थे कि सत्यवती की सहज़ात

बुद्धि बहुत सही है, और वह कभी धोखा नहीं देती। इसीलिये वह कुछ चिंतित होकर ही बाहर चले गये।

जो काम शुरू किया गया था वह बीच में तो बन्द नहीं किया जा सकता था। फिर अब यह कस्बेवालों के सामने सम्मान का प्रश्न भी हो गया था। जिन लोगों को उन्होंने कहा था कि लड़के को अच्छी नौकरी लग गई, उनके सामने वे अपना सिर नीचा कैसे करते? इसीलिये मकान की मरम्मत जारी रही, और मिस्त्रियों के सुझावों के अनुसार उसमें कुछ नई बातें भी कर दी गईं। सत्यवती का विरोध कभी कम नहीं हुआ, बल्कि ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, बढ़ता ही गया। एक दिन तो वह बहुत बिगड़ गई, और तृतीय पुरुष का प्रयोग करती हुई बोली—"अपने को ही अक्लमन्द समझते हैं। जैसे और लोग तो घास खाकर ही रहते हैं। समझ रहे हैं कि मकान में कुछ टीमटाम होने पर लड़के के लिये अच्छा दहेज मिलेगा, पर यह नहीं सोचते कि उसी तरह से लड़कियों की शादी में लड़केवाले अधिक मांगेंगे। फिर क्रोध से विह्वल होकर आज की डाक में आई हुई एक चिट्ठी निकालकर मुनीम जी को देती हुई बोली—"यह देखो दामाद क्या लिखते हैं। शायद सुमित्रा ने लड़कबुद्धि से लिख दिया था कि घर की मरम्मत हो रही है, इसी पर उसने लिखा है कि कौशल्या को जब से बच्चा हुआ है, तब से वह बीमार रहती है, और कुछ रुपये भेज दिये जाय।"

बनवारीलाल अभी-अभी वही लिखकर घर पर आये ही थे। यह बावेला देखकर एक बार घबड़ा गए। फिर क्रुद्ध हुए, पर यह जानते थे कि सत्यवती पर क्रोध करना संभव नहीं है क्योंकि वह तो एक लगावे चार पावे वाला हिसाब रखती है। फिर भी किसी पर क्रोध करना जरूरी था। उनका सारा क्रोध सुमित्रा पर जा पड़ा, और बिगड़कर बोले—"यह कलमुंही जाने क्यों

हमारा नाश कराने पर तुली हुई है। एक तो इसकी शादी की चिन्ता के मारे रात को नींद नहीं आती, और तिस पर यह हरकत। जब देखो तब कलम लेकर चिट्ठी ही लिख रही है। आज से इसका चिट्ठी लिखना बंद। अगर मैंने इसे कलम हाथ में लिये हुए देखा, तो या तो यही इस घर में रहेगी या मैं। कहीं कुछ नहीं, खामखाह नरेन्द्र को लिख दिया कि घर की मरम्मत हो रही है। यह भी कोई ऐसी बात है जो लिखने लायक हो। नरेन्द्र तो मानो इसी की ताक में रहता है कि ससुराल से क्या ऐंठा जाय।"

सत्यवती बीच में बोल पड़ी—"मैंने पहले ही कहा था कि अभी रहने दो घर की मरम्मत, पर तुम नहीं माने। लड़की ने लिख दिया तो क्या हुआ? उसे क्या मालूम था कि यह भी कोई छिपाने की बात है। जब रईसों में अपनी गिनती कराना चाहते हो, तब दामाद को दोगे नहीं तो क्या करोगे? अब कुछ नहीं तो नरेन्द्र को २० रुपये तो भेजने ही पड़ेंगे।" अन्तिम शब्दों को वह ऐसी बोली, मानो इस प्रकार जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है उससे वह खुश ही हुई हो।

मुनीमजी एक मिनट तक सोचते रहे जैसे किसी गोरखधंधे में फंस गये हों, पर अगले ही क्षण निर्णयात्मक रूप से बोले—"नरेन्द्र का मैं श्वसुर हूं, उसे मुझसे मांगने का अधिकार है, पर उसे सन्तोषी के कमाये हुए धन पर कोई अधिकार नहीं है।"

सत्यवती ने उसी प्रकार से हिंस्र लहजे को जारी रखते हुए कहा—"मकान की मरम्मत में जो खर्च हो रहा है, यह सन्तोषी के रुपयों से हो रहा है, या तुम्हारे रुपयों से?" फिर तीखे व्यंग की हंसी-हंसती हुई बोली—"तुम नरेन्द्र को यह लिखकर धोखा दे सकते हो, पर मुझे नहीं। कल सीधे से

नरेन्द्र को २० रुपये भेज देना, नहीं तो मिस्त्रियों को मजदूरी नहीं दूंगी।"

बात यह है कि पुराने नियम के अनुसार जो कुछ पैसा जमा होता था, वह सत्यवती के पास ही रहता था। यदि वह पैसे रोक लेना चाहती, तो वह रोक सकती थी। दो-तीन दिनों के अन्दर पैसे भी देने थे। इसलिए बनवारीलाल घबराये, पर अकड़ते हुए बोले—"यह कोई बात है भला कि तुम पैसे रोक लोगी? मेरा पैसा है मैं जो चाहूंगा सो करूंगा। मैं कोई शराब में पैसा थोड़े ही फूंक रहा हूं जो तुम से या किसी से डरूँ। पैसे तुम्हें देने पड़ेंगे।"

सत्यवती क्रोध में इतनी विह्वल हो रही थी कि उसे इस बात की भी सुध नहीं रही कि मुनीमजी ६ बजे खाकर गये थे, और अब शाम को लौटे हैं। बोली—"पैसे तो मैं दूंगी, पर मनीआर्डर भी तुम्हें भेजना पड़ेगा। पहले मनीआर्डर फिर और काम।"

मुनीमजी अपनी छड़ी फटकारते हुए बोले—"कैसा मनीआर्डर जो। बड़ी आई है दामाद की तरफदारी करनेवाली।"

"क्यों न करूंगी? जब पैसे फूंक रहे हो, तो दामाद को भी तो दो, क्या वह तुम्हारा कोई नहीं है?"

मुनीमजी बहुत बिगड़ गये, बोले—"सीधे मुंह बात करो जी। पैसा फूंक रहा हूं, क्या कोई मैंने रंडी रख ली है?"

"यह उससे भी बढ़कर है। यह जो रोग लग गया कि अपनी गिनती कस्बे के रईसों में करवाओ, यह सबको ले डूबेगा।"

"ले डूबे तो ले डूबे, मैंने जन्म-भर के लिये किसी का पट्टा थोड़े ही लिखवाया है। अब तुम्हारा लड़का कमाऊ हो गया, उससे समझो। मैं तो जैसा चाहूंगा वैसा करूंगा।"

लड़के के नाम पर सत्यवती कुछ पसीजी, पर क्रोध के लिये नया कारण ढूंढ़ती हुई बोली—"आज अगर सन्तोषी कमा रहा है, तो वह तुम्हारी बदौलत नहीं। तुम तो उसे एन्ट्रेंस के बाद अपनी ही तरह मुनीम बनाने पर उतारू थे। यह तो उसी का हौसला था कि उसने अपने खर्चे से सारी पढ़ाई की।"

बनवारीलाल इस बात से परिचित न हों ऐसी बात नहीं। पर सत्य विशेषकर क्रोध के समय बहुत ही कटु होता है, इसीलिये वे तिलमिलाकर बोले—"अभी तो कमाई का एक पैसा भी हाथ नहीं लगा, इसी पर इतना तुनक रही हो। उसी की शादी में काम आयगा। रहा घर की मरम्मत सो कौन मैं घर साथ लिये जाता हूं। घर न लड़कियों का है न मेरा, घर तो उसी का है" कहकर वे थक कर बैठ गये।

यद्यपि सत्यवती बहुत नाराज थी, अंतिम वाक्य उसे चुभ गये। वह पहले से शांत होकर बोली—"तुम्हारा ही दामाद है, और तुम्हारा ही लड़का है, जो चाहे सो करो, मैं क्यों खामख्वाह बीच में पड़ूं।" कहकर वह नाराज़ होकर मुनीमजी के जलपान की व्यवस्था करने चली गई।

अगले दिन नरेन्द्र को लिख दिया गया कि अगले महीने सन्तोषकुमार के पास से मनीआर्डर आते ही उसे कुछ पैसे भेज दिये जायेंगे।

पांच

सन्तोषकुमार को नौकरी करते हुए दो महीने से अधिक हो गए, पर उसे ठीक-ठीक पता नहीं लगा कि उसका क्या काम है। उसे अक्सर म्युनिसिपैलिटी, रेल तथा सरकार के कर्मचारियों से मिलने के लिये भेजा जाता था। उसे जब-तब कांग्रेस के अधिकारियों से भी मिलना पड़ता था। इतना उसे पता हो गया था कि उसके फर्म में गल्ला, तिलहन तथा कपड़ों का व्यापार होता है, पर उसे गल्ला, तिलहन अथवा कपड़ों का कभी दर्शन नहीं हुआ। उसका काम सिर्फ इनके सम्बन्ध में इतना ही था कि कहीं मामला अटके तो सेठ अमोलकचंद की हिदायत के अनुसार मिले। जैसी हिदायत दी जाती थी वह उसका हुबहू पालन करता था। करते-करते कारोबार के सम्बन्ध में कुछ अस्पष्ट धारणा हो चली थी, पर अभी तक वह इस बात को समझ नहीं पा रहा था कि आखिर इन बातों को करने से क्या फायदा हो रहा है और कैसे फायदा हो रहा है।

अमोलकचन्द काहनचन्द फर्म के नाम से प्रांत-भर में राशन

की बहुत-सी दुकानें थीं। इन्हीं दुकानों की आड़ लेकर यह फर्म गल्ला में चोरबाजारी किया करता था। पर सन्तोषकुमार को इसका पता नहीं था। वह तो सीधे कालेज से आया था, न व्यापार के नियमों से परिचित था और न म्युनिसिपैलिटी या रेल के नियमों से ही उसका कोई परिचय था। सेठजी उसे इस सम्बन्ध में सम्पूर्ण अंधेरे में रखते थे। जब किसी को घूस देना होता था, तो कह देते थे कि इस रुपये की रसीद नहीं मिलेगी। हिदायत के अनुसार सन्तोषकुमार इन स्थानों से रसीद नहीं लेता था। कभी-कभी उसके मन में यह प्रश्न उठता था कि यह कैसी अजीब बात है कि कहीं-कहीं तो एक-एक रुपये की रसीद लेने की हिदायत रहती है, तो कहीं-कहीं सैकड़ों रुपये बिना किसी रसीद के दे दिये जाते हैं। पर वह मन में इस तरह तसल्ली कर लेता था कि व्यापार का शायद यही नियम हो। जो रुपये बिना रसीद के दिये जाते थे, उनके सम्बन्ध में अकसर यह भी हिदायतें रहती थीं कि कोई अगर सामने हो तो न देना, अकेले में देना, कोई देख न ले इत्यादि। वह बहुत ही सूक्ष्मता के साथ उनका पालन करता था।

सेठ अमोलकचन्द उससे बहुत खुश थे। इस बात को सन्तोषकुमार भी समझता था, और वह भी इस बात से बहुत प्रसन्न था। यद्यपि सेठजी इस समय मुख्यत: चोरबाजारी ही करते थे, पर उन्होंने अपने यहां यह नियम बना रक्खा था कि महीने की पहली तारीख को ही सब कर्मचारियों तथा नौकरों को तनख्वाह दी जाय। इसके साथ ही रात में काम करने या साधारण से अधिक काम करने के लिए भी इनाम-इकराम की व्यवस्था थी। फर्म के सारे कर्मचारी अपने मालिकों से खुश थे। सन्तोषकुमार भी महीने की पहली तारीख को तनख्वाह पाते ही घर के मनीआर्डर कर देता था। उसकी रहन-सहन पहले की

ही तरह थी, कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। हां अब काम के दबाव के मारे अक्सर स्वयं खाना बनाने का मौका नहीं मिलता था। उसने सारी ट्यूशनें छोड़ दी थीं, पर एक ट्यूशन अभी तक चल रही थी। जिस लड़के को वह पढ़ाता था, उसके बाप ने उसे बहुत अनुरोध किया था कि यह लड़का आपही से पढ़ सकता है, औरों से नहीं, इस कारण उसे वह ट्यूशन रखना पड़ा था। लड़के के बाप ने उसे यह भी आजादी दे रक्खी थी कि सवेरे या शाम जब मौका लगे तभी आकर एक बार पढ़ा जावे, कोई इस बात की बंदिश नहीं थी कि सवेरे ही आवे या शाम को ही।

एक दिन सेठजी ने उसे विशेष रूप से बुलाकर बड़ी देर तक समझाया, और हिदायतें दीं। हिदायत तो वे रोज ही देते थे, पर आज की हिदायतों की उन्होंने कई बार पुनरावृत्ति की, और उसे तभी छोड़ा, जब वह सारी बातों को अच्छी तरह समझ गया। प्रांत में दुर्भिक्ष पड़ने की संभावना थी, इस कारण सरकार बड़ी सावधानी से परिस्थिति का अवलोकन कर रही थी, और उसी के अनुसार काम कर रही थी। दूसरे प्रांतों से गल्ला मंगाने की चेष्टा की जा रही थी, और इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार का सहयोग भी प्राप्त हो गया था। पर दूसरे प्रांतों की भी हालत कुछ अच्छी नहीं थी। राशन में लोगों को जितना अन्न मिलता था, वह पेट भरने के लिए यथेष्ट नहीं पड़ता था, इस कारण कुछ लोग तो झूठे राशनकार्ड बनाये हुए थे, पर जो लोग ऐसा नहीं करते थे वे लोग भी चोरबाजार में गल्ला खरीदने के लिए बाध्य होते थे। यह कोई छिपी हुई बात नहीं थी, और सरकार को भी इसका पता था। राशनिंग पद्धति में यहां पर यही गलती रह गई थी कि चीजों का राशन तो कर दिया गया, पर राशन से जो गल्ला दिया

जाता था, वह कम पड़ता था। मक्खन, मांस इत्यादि में कमी तो चल सकती है क्योंकि ये कोई अनिवार्य आवश्यकता की चीजें नहीं हैं कि इनके बगैर गुजारा ही न हो, पर चावल, गेहूं के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। चोरबाजार के कारोबारी इसी त्रुटि का फायदा उठाकर अपना काम चलाते थे। पर अमोलकचन्द काहनचन्द के सामने और भी समस्यायें रहती थीं। वे यह कि किस इलाके में अधिक-से-अधिक दाम मिल सकता है, कहां कृत्रिमरूप से दुर्भिक्ष पैदा किया जा सकता है, इत्यादि। इस समय अमोलकचन्द फर्म ने हिसाब लगा कर देखा था कि यदि इस इलाके में गल्ले को आने न दिया जाय तो यहां चोरबाजार में गल्ले का दाम दुगुना हो सकता है। इसलिए इस समय अन्य ऐसी कम्पनियों के साथ मिलकर अमोलकचन्द काहनचन्द इस बात की कोशिश में लगे हुए थे कि दूसरे प्रांतों से जो गल्ला इस इलाके में आनेवाला है उसे किसी-न-किसी तरह रोका जाय।

इसी उद्देश्य को लेकर सेठ अमोलकचन्द अपने इलाके में काम कर रहे थे। मजे की बात यह थी कि यद्यपि प्रांतीय सरकार ही सस्ते दामों पर दूसरे प्रांतों यहां तक कि विदेशों से गल्ला मंगा रही थी, फिर भी गल्ले का यह सारा आयात निजी कम्पनियों के जरिये से ही हो रहा था। अमोलकचन्द काहनचन्द को भी इस आयात व्यवसाय का एक बहुत बड़ा हिस्सा मिला हुआ था। गल्लों से लदी हुई एक पूरी मालगाड़ी आ रही थी। सेठजी ने इसकी व्यवस्था की थी, बल्कि वे इसकी व्यवस्था कर रहे थे कि यह सारा गल्ला ऐन प्रांत के बाहर चुपके से उतार लिया जाय। इसी के लिए सेठजी सन्तोषकुमार को हिदायतें दे रहे थे। बहुत ही विश्वस्त व्यक्ति की जरूरत थी जिससे कि एक तो ऐसा न हो कि गल्ला तो उतर जाय, पर वह सेठ जी

के हाथ से जाता रहे, और दूसरा इस बात को भी देखना था कि यदि कहीं कोई गड़बड़ी हुई और धरपकड़ हुई तो सन्तोष कुमार तक ही मामला टल जाय। सेठजी समझते थे कि अव्वल तो सन्तोषकुमार इतना बुद्धिमान है कि किसी भी हालत में पकड़ा नहीं जायगा, और यदि पकड़ा भी गया तो किसी भी हालत में अपने मालिक का नाम न लेगा। इन बातों के सम्बन्ध में सन्तोषकुमार पर पूरा विश्वास होने पर भी सेठजी ने उसे इस कार्य का असली उद्देश्य नहीं बताया।

इसीलिये हिदायत देते समय उन्हें एक कहानी गढ़नी पड़ी। बोले—"भई असली बात यह है कि सरकार तो नासमझ है, समाजवादियों के इशारे पर चल रही है, और किसी को कुछ तजुर्बा तो है नहीं। जिन्दगी-भर तो जेल की रोटियां तोड़ते रहे, अब एकाएक गद्दी पर बैठा दिये गए, तो ये क्या जानें कि देश का शासन कैसे किया जाता है। ये लोग आदर्श पर जान देते हैं, पर दुनिया में ऐसा तो होता नहीं कि एक तरफ़ आदर्श हो और दूसरी तरफ़ बुराई हो। हमें तो हमेशा दो बुराइयों में से एक बुराई को चुनना पड़ता है, और यही राजनीति है।" कहकर सेठजी ने अपने गले को साफ़ किया, और फिर आंख मारकर मानों वे कोई बहुत गूढ़ बात कह रहे हों, बोले—"अब इसी मामले को लो। यों तो सर्वत्र अकाल है और सब जगह गल्ले की जरूरत है, पर जहां हम गल्ला उतारना चाहते हैं, वहां यहां से कहीं अधिक आवश्यकता है क्योंकि वहां तो करीब-करीब दुर्भिक्ष पड़ रहा है। अगर मैं इस बात को सरकार से कहता हूं तो वहां कोई सुननेवाला नहीं है। कोई बात कहूंगा तो कहेंगे लिखकर दो। जब बात लिखकर दे दी गई, तो उसकी एक फ़ाइल बनेगी, और वह महीनों इधर-से-उधर अफ़सरों के ट्रे में घूमती रहेगी। तब तक उधर लाखों की जानें चली जायँगी। भई अपने से तो

यह देखा नहीं जाता। इसीलिये कुछ कौशल से काम लेना पड़ रहा है। समझ गये न ?"

सन्तोषकुमार को जैसा बताया गया उसने वैसा ही समझा। वह स्वयं किसी अव्यक्त कारण से इस सरकार से खुश नहीं था। उसने मान लिया कि सेठजी जो कुछ कह रहे हैं, वह सही हो होगा। उसने कहा—"आप निश्चित रहें मैं गाड़ी का सारा माल उतार लूंगा।"

सेठजी ने आश्वासन देते हुए कहा—"तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ेगा। बस खड़े होकर सारा काम देख लेना कि कहीं बोरियां इधर-उधर तो नहीं जा रही हैं। निश्चित समय पर गाड़ी खुद ही खड़ी हो जायगी और कुली तथा ट्रक तैयार मिलेंगे। बस अपने सामने गोदाम में सारा माल रखवा देना। वहीं से गरीबों में गल्ला नाममात्र मूल्य पर बँटवा दिया जायगा। हां और एक बात"—कहकर सेठजी जैसे दुविधा में पड़ गये और सोचने लगे।

सन्तोषकुमार ने कहा—"कहिये, कहिये, मुझे सारी बात समझा दीजिये जिससे कि कोई गलती न हो।"

सेठजी फिर भी चुप रहे, एक बार उन्होंने सन्तोषकुमार को ध्यान से देखा, फिर मानो एकाएक किसी निश्चय पर पहुंचते हुए बोले—"अच्छे काम में हमेशा विपत्ति होती है, पर अपना काम यह है कि विपत्ति से न घबड़ायें। तुम जानते हो कि यहां पुलिस कितनी खराब है। बात यह है कि यह स्वतंत्र भारत की पुलिस तो है नहीं, वह तो वही अंग्रेज़ों के ज़माने की पुलिस है, जिसे बस लकीर की फकीरी आती है। कभी ये लोग यह नहीं सोचते कि देश की भलाई किस बात में है। और वे बेचारे जाने भी क्या। पचास-पचास रुपये के नौकर। न पढ़े न लिखे। इसलिये अगर पुलिस ने कोई बाधा डाली, यहां तक कि यदि

तुम गिरफ़्तार भी हो जाओ तो घबड़ाना मत। वे तो बस यही पूछेंगे कि और कौन-कौन हैं, पर अपने लोग तो क्रांतिकारी हैं, कभी नाम नहीं बता सकते। जान भले ही चली जाय, पर किसी और को फंसा नहीं सकते। फिर याद रखना कि सेठ अमोलकचंद कोई कच्ची गली नहीं खेले हैं। फ़ौरन तुम्हें छुड़ायेंगे। बिलकुल चिंता न करना।"

इस प्रकार से समझा-बुझाकर सेठजी ने सन्तोषकुमार को अपनी मोटर पर स्टेशन ले जाकर कलकत्ता के लिये रवाना कर दिया। जाते समय और भी समझा दिया—"कहीं दस-बीस रुपये देने से मूर्खों से जान छूटती हो तो इसकी चिंता न करना। फ़ौरन रुपये दे देना। याद रखना कि ऐसे कार्य के लिये दस-बीस तो क्या मैं हज़ारों फूंक देने के लिये तैयार हूँ। लोग भूखों मरें, और हम सरकार की बातों में आकर उनके लिये कुछ न करें ऐसा नहीं हो सकता।"

सन्तोषकुमार ने सेठजी को पूरा आश्वासन दिया, और वह इस विचार को लेकर रवाना हो गया कि वह कोई बहुत अच्छा काम करने जा रहा है। उसी गाड़ी से उसके इस काम के दूसरे कई सहायक भी जा रहे थे। पर सन्तोषकुमार को इनका पता नहीं था। उन लोगों को भी सन्तोषकुमार का पता नहीं था। अमोलकचंद कहानचंद ने इस प्रकार से इस मामले को संगठित किया था कि क्रांतिकारी भी उनके संगठन को देखकर दंग रह जाते। यह तो छिपी बात नहीं है कि दुनिया-भर में चोरबाजारियों का संगठन क्रांतिकारियों से कहीं अधिक सुदृढ़ होता है, क्योंकि जहां भी दरवाजा बंद मिलता है, वे उसे चांदी की गर्मी से पिघलाकर खोल लेते हैं।

छः

रात के अँधेरे में निर्दिष्ट स्थान पर पूर्व से आनेवाली एक मालगाड़ी रुक गई। इंजन में खराबी के कारण ही गाड़ी इस प्रकार से बीच रास्ते में रुक गई थी। इंजन के लोग इंजन को सुधारने में लग गये। गार्ड ने एक बार जाकर इंजन-ड्राइवर से सारा हाल पूछ लिया, फिर वह जाकर अपने डब्बे में बैठ गया। इतने में जंगल के अन्दर से बहुत से लोग निकल आये, बात-की-बात में मालगाड़ियां खुल गईं और उनके गल्लों के बोरे लदकर पास ही खड़े ट्रकों में पहुंच गये। यह सारा काम बहुत क्षिप्रता से होता रहा। इंजन के लोग अपने काम में लगे रहे, और गार्ड अपने डब्बे के अन्दर बैठा रहा। ठीक एक घंटे बाद इंजन ड्राइवर ने सीटी दी, जिसका मतलब यह था कि इंजन सुधर गया। गार्ड ने उतरकर इधर-उधर देखा तो कहीं किसी का पता नहीं था। उसने दो-तीन बार अपनी लालटेन को जंगल की तरफ़ हिला दिया, तो उधर से किसी ने तीन बार टार्च जलाया। फिर

गार्ड ने हरी बत्ती जलाकर इंजन को इशारा किया, और गाड़ी चल निकली।

जब गाड़ी बनारस स्टेशन पर पहुंची, तब यद्यपि माल पहले ही निकाला जा चुका था, फिर भी यह दिखाया गया कि डब्बों की सीलें ठीक हैं, और उनका माल बनारस में उतारा गया। ये सारे काम घड़ी की तरह नियमितता से हुए। किसी को कानोंकान पता नहीं लगा कि राज्य की सरकार के साथ इतना बड़ा धोखा हुआ।

अमोलकचंद काहनचंद का फर्म इसी प्रकार कई काम करता रहा, और अब संतोषकुमार को इन कामों में प्रमुखता के साथ भाग लेने के लिए भेजा जाने लगा। संतोषकुमार बराबर यही समझ कर इन कामों को करता रहा कि वह जो कुछ कर रहा है देश के मंगल के लिए कर रहा है। अवश्य कई बार उसे संदेह हो जाता था कि आखिर बात क्या है कि इन सारे कामों को इस प्रकार गुप्त रूप से करना पड़ता है। यद्यपि वह कोई राजनीतिज्ञ नहीं था, और न उसे राजनीति में कोई विशेष दिलचस्पी थी, फिर भी वह एक आदर्शवादी युवक था, और यह चाहता था जैसा कि इस वर्ग के अधिकांश भावुक आदर्शवादी चाहते हैं कि उसे तो कोई हानि न पहुंचे, और देश की भलाई भी हो।

संतोषकुमार ऐसे कई कामों को सफलतापूर्वक करके लौट आया तो सेठजी ने एकाएक उसको ५० रु० की तरक्की दे दी। जब सेठजी ने उसे यह खबर दी तो उसने कुछ लज्जा के साथ कहा..."मैंने तो कुछ भी नहीं किया है जिसके कारण मेरी यह तरक्की हो रही है। मैंने तो देश के लिए ही यह सब किया है।"

सेठजी मन-ही-मन बहुत खुश हुए क्योंकि उन्हें ऐसे ही आदर्शवादी युवकों की आवश्यकता थी। बोले..."पर मुझे भी तो तुम्हारा स्वार्थ देखना चाहिये। काम के बोझ के कारण तुमने

जो ट्यूशन छोड़ दी उसकी क्षतिपूर्ति भी जरूरी है।" कहकर सेठजी प्रोत्साहनसूचक हंसी हंसते रहे।

तब संतोषकुमार क्या कहता, वह और भी खुशी-खुशी काम करने लगा। उसने उस दिन से प्रण कर लिया कि ऐसे देशभक्त मालिक की सेवा में जान दे देनी पड़े तो भी कोई बात नहीं। वह और भी मुस्तैदी तथा ईमानदारी से काम करने लगा।

मालिकों में सन्तोषकुमार की वाहवाही और ईमानदारी की तारीफ हो रही थी, पर उसे पता नहीं था कि सेठजी के अन्य कर्मचारी उस पर बहुत नाखुश रहने लगे थे। जब इन लोगों ने यह सुना कि एकाएक सन्तोषकुमार की तनख्वाह में ५० रु० की तरक्की हो गई, तो उन लोगों का असंतोष और बढ़ा। सब-के-सब खुल्लमखुल्ला उसके विरुद्ध कहने लगे। कानाफूसी अब इस तरीके से होने लगी कि उसे कानाफूसी नहीं कहा जा सकता। उसके मुंह पर लोग उसे बिलार भगत और न जाने क्या-क्या कहने लगे। सन्तोषकुमार को इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसे लोग क्यों ऐसा कह रहे हैं, पर बहुत तालाश करने पर भी उसे इसका कारण समझ में नहीं आया। वह मन-ही-मन दुखी रहने लगा। एक बार उसने सोचा कि सेठजी से इस बात को बता दे, पर यह सोचकर कुछ न कह सका कि शायद सेठजी इस बात से नाराज हों, उसे नालायक समझें, और क्या पता उसे निकाल ही दें। अब तो उसके पास ट्यूशन भी नहीं रह गया था, इसलिये नौकरी छूट जाने की बात सोचकर उसका हृदय धक से हो गया। सेठजी को कुछ कहने के बजाय वह कर्मचारियों से और भी मीठे मुंह बात करने लगा, जो उससे नीचे के कर्मचारी थे उनसे भी भैया-दद्दा कहकर पेश आने लगा, पर जो लोग अपना मुंह मीठा कराने पर तुले हुए थे, वे केवल मीठे मुंह बात करने से कैसे पसीजते? जितना ही सन्तोषकुमार उनसे दबकर

शराफत के साथ बात करने लगा, वे उससे उतना ही अधिक नाराज होने लगे।

सेठजी के काम पड़ते ही रहते थे। कहीं चोरी से रात को ट्रक में गल्ला जाता था, तो कहीं चोरी से गल्ला आता था। कभी रेल कम्पनी के लोगों से काम निकाला जाता था तो कभी म्यूनिसिपैलिटी के कर्मचारियों से। इधर तो सेठजी बहुत ही साहसी हो गये थे, और वे न मालूम क्या बन्दोबस्त किये हुए थे कि उन्हें सैनिक या प्रतिरक्षा विभाग की लारियां मिल जाती थीं और उनमें चढ़ाकर माल इधर-से-उधर भेजा जाता था। लोग यही समझते थे कि फौजी विभाग का काम हो रहा है, पर होता सेठ जी का काम था।

एक ऐसा ही काम हो रहा था। संध्या का समय था। बीस-पचीस आदमी पांच ट्रक लेकर एक जंगल में रेलवे लाइन के किनारे पड़े हुए थे। इन लोगों को पता नहीं था कि क्या होने वाला है। केवल सन्तोषकुमार को कुछ अस्पष्ट पता था, पर सो भी पूरा नहीं। अबकी बार सेठजी बहुत ही बड़ा काम कर रहे थे। अब तक वे जो कुछ करते थे, वह इतना ही होता था कि अपने फर्म के नाम से आये हुए गल्ले को अपनी सुविधा के अनुसार सरकार से गुप्त रूप से जहां चाहे तहां भेजते थे, या उतार लेते थे। पर अबकी बार वे पारसनाथ रामचरण कम्पनी का गल्ला बीच में ही उड़ा देना चाहते थे। यह काम बहुत ही जोखिम का था क्योंकि आगे जब पारसनाथ रामचरण को यह पता लगता कि उसका गल्ला कहीं बीच ही में उड़ गया है, तो मामला पुलिस में जाता और बाकायदा जांच-पड़ताल होती। फिर भी सेठजी को विश्वास था कि यह काम सुचारु रूप से हो जायगा। उन्हें मुख्यतः रेल कम्पनी में अपने परिचयों और

रिसूखों पर विश्वास था, और वे समझते थे कि सब काम ठीक हो जायगा।

ऐसा बन्दोबस्त किया गया था कि निर्दिष्ट स्थान पर गाड़ी खड़ी हो जाती, और आधे घंटे के अन्दर गाड़ी खाली कर दी जाती। फिर बाकायदा गाड़ी चलती, और इधर माल लेकर ट्रक रवाना हो जाते। यद्यपि सन्तोषकुमार को यह सारा किस्सा पता नहीं था, फिर भी उसे इतना पता था जिससे वह अपना हिस्सा अच्छी तरह अदा कर सकता। जो समय दिया गया था, अभी उसमें दो घंटे रहते थे। सन्तोषकुमार तथा उसके साथी जैसा कि वे हमेशा करते थे जंगल में छिपे हुए थे। ट्रकों पर ड्राइवर डटे हुए थे। सन्तोषकुमार कुछ उन्मन-सा बैठकर अपने हाथ का छोटा-सा टार्च जलाकर बार-बार घड़ी देख रहा था। इतने में उसने पास ही से कहीं से एक शोर-सा सुना जैसे दो-चार आदमी एक साथ बात कर रहे हों। उसके कान खड़े हो गये कि यह क्या मामला है। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। एक दफे उसका दिल धक से हुआ कि कहीं पुलिसवाले तो नहीं आ गये, पर पुलिसवाले आयेंगे तो कर क्या लेंगे। सेठजी ने इस बात को भी पहले से ही सोच रक्खा था। प्रत्येक ट्रक में ड्राइवर की सीट के नीचे जंगली बूटियों को काटने के औजार रक्खे हुए थे। किसी को इसका पता नहीं था, शायद ड्राइवरों को भी इसका पता न हो। सन्तोषकुमार जानता था कि ये औजार क्यों रक्खे हुए हैं। यदि पुलिस आ जाती तो उनसे यह कहा जाता कि ये लोग आयुर्वेद की कुछ बूटियों की तलाश में इधर आये हैं। बात बिलकुल झूठी थी, पर सेठजी ने कहा था कि अव्वल तो ऐसा मौका आयगा ही नहीं, और यदि आया, तो वह बयान में यही कह दे, बाकी सब अदालत में निपट लिया जायगा। अतएव संतोषकुमार को पुलिस से डरने की आवश्यकता नहीं थी। पर यह तो

दिमाग की बात थी। शोर बढ़ रहा था, और उसे डर मालूम हो रहा था। उसने बिलकुल उत्कर्ण होकर सुना, तो उसे अपने ही आदमियों की आवाज़ मालूम पड़ी। हां, इसमें कोई शक नहीं। यह तो रमचरण की आवाज मालूम हो रही है। और यह बुद्धू या बुद्धन की। अच्छा तो बुद्धन भी वहां पहुंच गया! तो इसके माने यह हुए कि ट्रक के ड्राइवर भी अपने-अपने ट्रक छोड़कर चले गये हैं। पर यह हो क्या रहा है। लोग तो क्रोध में कुछ कह रहे हैं। क्या सचमुच पुलिस ही आई है, और उसने इन लोगों को गिरफ्तार किया है। गिरफ्तार किया, तो बहस क्यों कर रहे हैं? फौरन उसे खबर देनी चाहिये थी। ऐसा न करके वे फजूल की बहस क्यों कर रहे हैं। उन सबको तो यही हिदायत थी कि बाहर का कोई भी आदमी मिले, तो वे उससे बात न करें, कोई कुछ पूछे तो वे उसका उत्तर न दें, और उसे सामने कर दें।

सन्तोषकुमार के कान तो शोर ही की तरफ रहे, और धीरे से उसने टार्च जलाकर घड़ी देखी, तो उसे मालूम हुआ कि जो समय दिया गया है, उसमें अभी डेढ़ घंटा बाकी है। अब भी उधर लोग चिल्ला-चिल्लाकर बात कर रहे थे। एक बार तो उसकी तबियत हुई कि जब गड़बड़ हो चुकी है, तो वह यहीं से रफूचक्कर हो जावे, पर वह ऐसा कर न सका। वह टार्च जलाता-बुझाता उसी तरफ चला जिधर शोर हो रहा था। बहुत ही जल्दी वह वहां पहुंच गया, जहां लोग अन्धेरे में खड़े-खड़े बात कर रहे थे। उसको देखते ही लोगों ने टार्च जलाया, और उसने आश्चर्य के साथ देखा कि ये तो सब अपने ही लोग हैं। उसने पूछा....''यह क्या शोर है भाई ?''

सब टार्च एक साथ बुझ गये, और एकाएक सन्नाटा हो गया। किसी ने उसके प्रश्न का उत्तर ही नहीं दिया। सन्तोष-

कुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ, और साथ ही कुछ भय भी हुआ कि शायद कोई अनर्थ हो गया जिसे वे छिपाना चाहते हैं। उसने कहा..."भाई बताते क्यों नहीं कि क्या बात है। अब मुश्किल से घंटा-भर का वक्त है, और तुम लोग इधर-उधर फिर रहे हो, यह अच्छी बात नहीं है।"

फिर सन्नाटा। किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। सन्तोषकुमार ने टार्च जलाकर देखा तो सब लोग खड़े थे। दो-चार के सिर झुके हुए थे, पर बाकी लोगों की आंखों में जैसे खून उतर रहा था। सन्तोषकुमार को यह बात बिलकुल अजीब मालूम हुई, उसने एक ट्रक ड्राइवर रामचरण का नाम लेते हुए कहा...."राम-चरण! क्या बात है?"

सूखे पत्तों पर एक बार जूता पड़ने की आवाज हुई। शायद कोई एक कदम आगे बढ़ा या पीछे हटा, फिर रामचरण नाम से सम्बोधित व्यक्ति ने कहा..."साफ बात है। आपने जब मुझसे पूछा है तो मैं साफ बात कहूंगा। जब से आप आये हैं, तब से हम लोगों को दस्तूरी कुछ नहीं मिलती।"

सन्तोषकुमार ने आश्चर्य से पूछा...."दस्तूरी कैसी?"

तब बीच में और कोई बोल पड़ा...."आपका क्या है, आप तो अपनी तनख्वाह बढ़ा लेते हैं, और यहाँ तो हम लोग मरे जा रहे हैं। रात-बिरात जगकर, तकलीफ उठाकर इसी कारण न आते हैं कि कुछ पैसे मिलेंगे। पर आपने तो सब बन्द कर दिया। हम लोग इसे कभी नहीं सहेंगे। आपसे तो हम लोगों को बहुत ज्यादा उम्मीद थी।"

सन्तोषकुमार ने आश्चर्य के लहजे में कहा...."तुम लोग दस्तूरी किस बात की मांगते हो? यह तो देश का काम है। तुम्हें नहीं मालूम कि सारे देश में दुर्भिक्ष-सा पड़ रहा है, सरकार इसका ठीक से सामना नहीं कर रही है, इसलिये सेठजी जहां जरूरत

है वहां चावल, गेहूं आदि पहुंचा रहे हैं। यह तो ऐसा काम है जिसमें हमें गांठ के पैसे खर्च करने चाहिये, और तुम लोग दस्तूरी मांग रहे हो।

रामचरण या पता नहीं कौन ठठाकर हंस पड़ा। सब लोगों ने उस व्यक्ति का अनुसरण किया। रामचरण बोला....“बाबूजी, आप बहुत ही सीधे हैं। सेठजी सारा चावल गेहूं ब्लैक कर रहे हैं, और लाखों कमा रहे हैं और आप समझते हैं कि वे देश की सेवा कर रहे हैं। खैर वे चाहे जो कुछ भी करें, उनका ईश्वर जाने और वह जाने, पर उनके लिये तो उचित नहीं है कि वे तो लाख रुपये कमावें, और हम लोगों को उसमें से सौ-पचास भी न दें।”

सन्तोषकुमार सहसा अपने कानों पर विश्वास न कर सका, पर सब लोग उससे पुराने थे, और सब लोग एक स्वर से इस बात को कह रहे थे, इसलिये वह उनकी इन बातों को अविश्वास भी न कर सका। उसे बड़ा धक्का सा लगा कि वह इतने दिनों तक एक चोरबाजारी के कठपुतले के रूप में काम करता रहा है। वह सहसा कुछ बोल न सका। न मालूम क्यों उसे याद आया कि उसने ट्यूशन भी छोड़ दिया है। उसे ऐसा मालूम होने लगा जैसे उसे किसीने टांग से बांधकर कुएं के अन्दर उल्टा लटका दिया हो। जंगल तथा उसके घोर अंधकार ने उसकी निराशा को और भी घनीभूत कर दिया।

बड़ी अजीब परिस्थिति थी, न तो यही उसकी समझ में आ रहा था कि कैसे उससे छुटकारा किया जाय, और न यही समझ में आ रहा था कि यदि छुटकारा किया जाय तो फिर क्या होगा। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह जंगल में था, और साथ में पांच ट्रक थे और इतने आदमी जिन सबकी जिम्मेदारी उसी पर थी। फिर इन लोगों को कुछ उत्तर देना था। क्या उत्तर देता, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। जितना ही सोचता था,

उतना ही वह और अधिक अन्धकार में पड़ जाता था। कुछ कहना जरूरी था, इस कारण वह बोला...."नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। और सेठ चोरबाजारी करते होंगे, पर हमारे सेठ ऐसा नहीं करते।"....

कहने को तो उसने ऐसा कह दिया, पर उसके मन ने गवाही नहीं दी, और ये शब्द उस सन्नाटे में खोखले से ज्ञात हुए मानो वे अपना उपहास आप ही करते हों। उसके शब्द विलीन नहीं हो पाये थे कि रामचरण ने कहा..."आप किस फेर में हैं? पर मैं कहता हूं, मालिक अगर बेइमानी करते हैं तो करें, हमसे क्या? हमें तो बस इतना चाहिये कि जहां वे लाख रुपये कमा रहे हैं, वहां दस हमारी जेब में भी पड़ जायं।"

सन्तोषकुमार को मानसिक रूप से पूर्ण विश्वास हो चुका था कि यह सारा काम चोरबाजारी के सिलसिले में ही हो रहा है, पर ऐसा मान लेने से कई तात्कालिक और साथ ही कई दूर की समस्यायें खड़ी हो जाती थीं, जिनका सामना करने की हिम्मत उसमें न थी, इसलिये मानो अपने से ही लुकाछिपी करते हुए उसने कहा...."मैं इसे कभी नहीं माना सकता।" फिर सहसा घड़ी की तरफ देखते हुए बोला—"अब केवल आध घंटा बाकी है, सब लोग अपने-अपने काम पर मुस्तैद रहें। मैं चला"—कहकर उसने शीघ्रता के साथ उस तरफ कदम बढ़ाया जिस तरफ से वह आया था।

वह एक कदम भी नहीं चल पाया था कि किसी ने उसका हाथ पकड़ लिया, और बोला—"यह नहीं हो सकता। कुछ तय करलो नहीं तो हम लोग कुछ नहीं करेंगे।"

संतोषकुमार बाधा पाकर खड़ा हो गया। फिर उसने अपने हाथ का छोटा-सा टार्च जलाया और सबके मुंह की तरफ देखा। सबके चेहरों पर निश्चय झलक रहा था, शायद निश्चय से भी

कुछ अधिक जिसे देखकर सन्तोषकुमार सहसा डर गया। उसने कहा—"तो तुम लोग क्या चाहते हो ? साफ-साफ क्यों नहीं कहते ?"

अबकी बार एक दूसरा व्यक्ति बुद्धन उर्फ़ बुद्धू प्रवक्ता बनकर सामने आया। बोला—"यह धांधली नहीं चलेगी कि आप तो अपनी तनख्वाह बढ़वा लो, और सेठजी के दोस्त बनो, और हम लोग मारे जायं!"

सन्तोषकुमार ने अबकी बार आत्मसमर्पण के लहजे में कहा—"तो आप लोग बताइये न कि क्या चाहते हैं ?"

"हम लोग सिर्फ़ अपनी दस्तूरी चाहते हैं।"

"मुझे तो नहीं मालूम कि दस्तूरी क्या है।"

तब बुद्धन ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि दस्तूरी का मतलब तनख्वाह के अलावा जो कुछ मिलता है उससे है। इसे एक प्रकार की बखशीश भी कहा जा सकता है।

सन्तोषकुमार ने कहा—"अच्छी बात है मैं सेठजी से कहूँगा कि वे दस्तूरी दें।"

बुद्धन पहले से कुछ रुखाई के साथ बोला—"आप सेठजी से क्या कहेंगे। यह तो आपको देना है। आपको जब ऐसे कामों पर सेठजी भेजते हैं तो जो रुपये देते हैं, उन्हीं में से आप दस्तूरी दिया करें। पहले ऐसा ही होता था।"

"पर वह रुपया तो... ....."

"हां वह रुपया घूस वग़ैरह के लिये आपको दिया जाता है, कहीं काम पड़े तो जैसे आप पुलिसवालों, रेलवालों तथा म्युनिसिपैलिटी वालों को घूस देने के लिये तैयार रहते हैं, और देते हैं, वैसे ही इस खर्च को भी समझें। आखिर हम लोग भी तो आदमी हैं।"

एक और रहस्योद्घाटन हुआ। तो उसके पास जो रुपये

रहते हैं, वे घूस के लिये होते हैं, और वह अब तक जिनको रुपये देता था, वह घूस होता था ? उसके मन पर एक धक्का और लगा। सेठजी तो यही बताते थे कि इतने रुपये देने हैं, वह कैसे जानता कि यह घूस है। बिजली की तरह गति से वह समझ गया कि यह तो घूस होता था। यदि इस प्रकार से घूस दिया जाता है, तो इन लोगों की दस्तूरी देने में ही क्या हर्ज है। उसने घड़ी में देखा सिर्फ १५ मिनट हैं। एकाएक निश्चय पर पहुंचते हुए बोला—"अच्छी बात है दस्तूरी मिलेगी।"

भीड़ में से किसी ने कहा—"हम वायदे पर नहीं चलते, हमें जो कुछ लेना-देना है, वह फौरन हो जाय।"

बुद्धन ने सबकी तरफ से कहा—"हां बाबू आप २२०) रुपये दे दीजिये, फिर काम शुरू होगा।"

बिना किसी तर्क के सन्तोषकुमार ने अपनी जेब से रुपये निकाले और टार्च की रोशनी में उन्हें गिनकर बुद्धन के हाथ में रख दिया। एक मिनट के अंदर या शायद उससे भी जल्दी यह रुपया एक अनुपात से बंट गया। सब लोगों के चेहरों का रुख भी बदल गया। सन्तोषकुमार ने घड़ी देखते हुए कहा—"अब दस ही मिनट रहते हैं। सब लोग अपनी-अपनी जगह पर तैयार हो जायं। गाड़ी आने ही वाली है।"

सब लोग अपना-अपना टार्च जलाकर अपने काम पर तैयार हो गये। सन्तोषकुमार टार्च जलाता हुआ अपनी जगह पर लौट गया। थोड़ी ही देर में उधर से गाड़ी आने की आवाज़ मालूम हुई। फिर उसकी रोशनी दिखाई पड़ी, और थोड़ी ही देर में गाड़ी आकर निर्दिष्ट जगह पर रुक गई। सब लोग तैयार तो थे ही। फौरन काम शुरू हो गया, और निश्चित समय से पहले ही सारा काम करके ट्रक रवाना हो गये, और इधर मालगाड़ी भी चली गई।

सात

बहुत दिनों के बाद सन्तोषकुमार घर आया था। इस कारण उसकी बड़ी आवभगत हो रही थी। मुनीमजी अलग से उसके लिए परेशान थे, तो सत्यवती उसके लिये तरह-तरह के खाने पकाने में व्यस्त रहती थी। यहां तक कि उसकी छोटी बहनें भी उसके साथ ऐसा व्यवहार कर रही थीं मानो वह घर का आदमी नहीं बल्कि कोई सम्मानित मेहमान हो। वह तो घर में इस कारण आया था कि शांति मिले, पर यहां तो इसके विपरीत अशांति का ही बोलबाला था। वह तो एक तरह से अपनी नौकरी छोड़कर ही आया था, पर यहां तो सारी बातें इसी को केन्द्रित करके हो रही थीं कि वह नौकर हो गया है, और उसे अपनी बिरादरी की दृष्टि से अच्छी तनख्वाह मिलती थी। बात यह है कि तनख्वाह का भी मानदंड प्रत्येक परिवार की भूतपूर्व परिस्थिति के अनुसार ही होता है। मुनीमजी के वृत्त में सन्तोषकुमार की तनख्वाह बहुत अच्छी समझी जा सकती थी, इसी कारण मुनीमजी इस विषय का उल्लेख करते हुए कभी थकते नहीं थे।

पहले ही दिन घर में आकर सन्तोषकुमार यह समझ गया कि घर में उसकी जो कदर हो रही है, वह कमाऊ पूत होने के कारण ही हो रही है। ऐसी हालत में वह कैसे कहता कि वह नौकरी छोड़ कर आया है। यह खबर सबके लिये वज्रपात के रूप में होती। फिर भी जितने ही दिन जाने लगे, उतना ही उसका मन बेचैन होने लगा। आखिर वह झूठ की पूँजी लेकर घर में कब तक लोगों से अपनी पूजा करवाता। उसे वह दृश्य पूरा याद है जब वह उस काम को करने के बाद सेठ अमोलकचंद से मिला था। उसने पहले ही वाक्य में साफ़ कह दिया था कि उसे बड़ा धोखा हुआ है, और जिसे वह देशभक्ति का कार्य समझ कर कर रहा था, वह तो केवल चोरबाज़ारी था। सेठजी पुराने खिलाड़ी थे। वे समझते तो थे ही कि किसी-न-किसी दिन इस सरल युवक पर सारा रहस्य खुल जायेगा, और वे इस परिस्थिति के लिए तैयार भी थे। मुंह बनाते हुए बोले—"किसी ने बहका दिया होगा। बात क्या है खोलकर कहो ?"

तब सन्तोषकुमार ने उस रात की सारी घटना का वर्णन किया। सेठजी न तो इस दस्तूरी की प्रथा से ही अपरिचित थे, और न इस बात से ही अनभिज्ञ थे कि उनके कर्मचारी उनके सबन्ध में क्या समझते हैं। सारी कहानी सुनकर उनके चेहरे पर क्रोध के चिह्न प्रगट हुए। पर तुरंत ही अपने को संभालते हुए बोले—"भाई देखो, देश का काम है, पर सब लोग अगर देशभक्ति नहीं करना चाहते, तो हम उन्हें इसके लिए मजबूर नहीं कर सकते। दस्तूरी कहो, घूस कहो, यह सब हमें देना ही पड़ेगा। जब ओखली में सिर रख दिया तो फिर धमाके से डर ही क्या है ? जहां अपनी टेंट से पचास जाते थे, वहां सौ चले जायेंगे। जायं, पर हमें तो इसी में मजा मिलता है।"

सेठजी इसी लहजे में बहुत-सी बातें कह गये। उन्होंने बारी-

बारी मे अपने चेहरे को करुण तथा दृढ़ बनाया, फिर भी सन्तोषकुमार को उस रात को जो धक्का लगा था, उससे वह संभल नहीं पाया। उसने कहा—"मुझे अब नौकरी नहीं करनी है।"

पर सेठजी ने उसे बहुत समझाया। सेठजी अपने तजर्बे से जानते थे कि यह बहुत ही ईमानदार व्यक्ति है, और ऐसे लोगों के रहने से उनका व्यवसाय अच्छा चल सकता है। इसलिए उन्होंने समझौते के रूप में कहा था—"अच्छी बात है अभी तुम्हारी तबियत नहीं लगती, तो थोड़े दिन के लिए घर हो आओ। नौकरी सुरक्षित है, जब भी आओगे, काम पर ले लिए जाओगे। पर जो कुछ करना, ठंडे दिमाग से तजर्बेकार लोगों की सलाह से करना।

इसलिए यद्यपि सन्तोषकुमार ने अपनी तरफ से इस्तीफा दे दिया था, पर सेठजी ने उसके लिए अपना दरवाजा खुला रक्खा था। इसी परिस्थिति में सन्तोषकुमार घर पर आया था। उसने यही सोचा था कि घरवाले उसके आदर्शवाद का स्वागत करेंगे, पर वहां देखा तो कुछ और ही रंग था। वह यह भी जानता था कि फौरन दूसरी नौकरी पाना बहुत मुश्किल है। उसके साथ के कई व्यक्ति अब भी गोते खाते फिर रहे थे। फिर भी यह सत्य कहां तक छिपाया जाता?

वह उदास रहता था, और अकसर घर छोड़कर कस्बे के बाहर किसी एकान्त स्थान में निकल जाता था। मुनीमजी इतने आनन्द-विभोर थे कि उन्होंने अपने पुत्र की मानसिक स्थिति को बिलकुल नहीं देखा। पर सत्यवती सारी बात ताड़ रही थी। वह समझ गई कि दाल में कुछ-न-कुछ काला है। नौकरी छूट जाने के सम्बन्ध में तो वह कुछ सोच ही नहीं सकती थी। उसके लिए भी यह बड़ा भारी धक्का होता। इसलिए उसने यह

सोचा कि शायद उसके विवाह के सम्बन्ध में मुनीमजी जिस प्रकार की बातें कर रहे हैं, वे उसे पसन्द नहीं हैं।

एक दिन सन्तोषकुमार एकांत भ्रमण से लौटा ही था कि सत्यवती ने उसे अकेला पाकर कहा—"बेटा क्या, बात है कि घुलते जाते हो ? न किसी से बोलते हो न किसी से बतलाते हो, क्या तुम्हारी तबियत कुछ खराब रहती है ?"

सन्तोषकुमार ने माँ को ध्यान से देखा मानो टटोल रहा हो कि यदि इससे पूर्ण सत्य कहा जाय तो यह उसे सहन कर पायेगी तथा साथ देगी या नहीं। पर किसी निश्चय पर न पहुंच कर बोला—"नहीं तो कोई ऐसी बात तो नहीं है मां।"

"पर कोई बात तो है जरूर, नहीं तो तुम ऐसे तो नहीं थे।"

"कोई ऐसी बात नहीं है मां, बस यही सोचा करता हूं कि धर्म के मार्ग पर रहकर गरीब बने रहना अच्छा है या अधर्म को अपनाकर धन और ऐश्वर्य भोगना।" कहकर उसने अपराधी की तरह सिर नीचा कर लिया।

सत्यवती कुछ समझ नहीं पाई, पर उसकी सहजात बुद्धि ने शायद उसे परिस्थिति का कुछ निर्देश दिया। बोली—"तुम ऐसी बातों पर क्यों सोचा करते हो ? अभी तो तुम्हारे खेलने खाने के दिन हैं। अब मैं कितने दिनों की हूं, बहू लाओ घर बसाओ। फिर चौथेपन में यह सब बात सोचना। फिर धर्म-अधर्म का सवाल भी बड़ा बेढब है।"

सन्तोषकुमार कुछ देर तक चुप रहा, मानों यह सोचता रहा कि कुछ कहने से फायदा है या नहीं। मुनीमजी दिन-रात में सौ बार अपने पड़ोसियों तथा साथियों को यह बात स्मरण दिलाते थे कि उनका लड़का २०० रुपये का नौकर है, और गत तीन-चार महीनों से ही उसने इतना अच्छा काम किया कि कम्पनी के साहब ने खुश होकर उसे ५० रुपये की तरक्की दे दी। यद्यपि

जहां सन्तोषकुमार काम करता था, वहां पर कोई भी साहब नहीं था पर मुनीमजी की धारणाओं के अनुसार श्रोताओं पर रोब डालने के लिए किसी-न-किसी सूरत में एक साहब का होना जरूरी था। इस कारण उन्होंने कल्पना के बल पर एक साहब की सृष्टि कर ली थी, और परम्परा के अनुसार उन्होंने इस साहब को एक तरफ तो बहुत ही क्रोधी और दूसरी तरफ बहुत ही दयालु याने झक्की चित्रित किया था। वे उसकी कहानियां कहते-कहते कभी अघाते नहीं थे। साहब की बात तो वे सन्तोषकुमार के सामने ही कहते थे, पर उसकी कहानियों को उसके कान बचाकर ही कहते थे। सन्तोषकुमार को पता था कि वे अपने लड़के की नौकरी को अपना ही शौर्य समझते थे, और उसी रूप में उसका बखान करते फिरते थे। पर सत्यवती को भी कम गौरव नहीं था।

सन्तोषकुमार ने कहा—"मैं जिस सेठ के यहां नौकरी करता था, वह चोरबाजारी का काम करता है, इसलिए मैं वहां से इस्तीफा देकर आया हूं।" कहकर उसने मां के चेहरे की तरफ देखा, तो जैसे उस पर किसी ने कारिख लगा दी थी। एक क्षण के लिए उसका हृदय धक से हो गया, और संभलते हुए बोला—"मैंने अपनी तरफ से तो इस्तीफा दे दिया, पर सेठजी ने अभी उसे मंजूर नहीं किया है। अभी मैं काम पर लौटूं, तो वे मुझे ले लेंगे।"

अंतिम शब्दों को उसने आत्मसमर्पण के लहजे में कहा, मानो यह कहता हो कि यदि भाग्य को मंजूर है तो वह यही करेगा।

सत्यवती को जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिल गया, बोली—"तो बेटा तुम नौकरी क्यों छोड़ोगे। यदि वह अधर्म करता है, तो अधर्म उसी को होता है, तुम तो अपने परिश्रम

का पैसा लेते हो ? तुम्हें इन बातों से क्या मतलब कि वह क्या करता है।"

सन्तोषकुमार ने समझाते हुए कहा—"वह अधर्म करता है करे, मुझसे कोई वास्ता नहीं है, यह बात तो तब ठीक होती जब मुझसे इस अधर्म का कोई वास्ता न होता। पर वह तो मेरे हाथ से अधर्म कराता है।" कहकर उसने संक्षेप में सेठ की सारी कार्रवाइयों का वर्णन किया।

सुनकर सत्यवती इतना तो समझ गई, कि काम बुरा है, वह यह भी समझी कि इसमें लड़के को खतरा भी है, फिर भी नौकरी छोड़ने की बात इतनी अकल्पनीय थी कि वह उस विचार के साथ किसी भी प्रकार समझौता न कर सकी। इसी समय उधर से मुनीमजी आ निकले। यद्यपि सत्यवती इन दिनों उनसे एक तरह से नाराज ही थी क्योंकि लड़के का सारा श्रेय वह खुद लेना चाहते थे, और बिना काम के वह उनसे बोलती नहीं थी, फिर भी इस समय उसने खुद मुनीमजी को बुलाया, बोली—"अजी देखो सन्तोषी क्या कह रहा है। इधर तो सत्यानाश हुआ जा रहा है, और तुम्हें कहानियां हांकने से ही फुरसत नहीं है।"

मुनीमजी इस प्रकार की झिड़की सहने के आदी थे, पर पुत्र के सामने वे इस प्रकार से रोब में नहीं आनेवाले थे, बोले—"तुम क्या समझती हो कि मैं खामखाह फिरा करता हूं। कई जगह चारा डाला है, चिड़िया फंसने ही वाली है।"

सत्यवती इस बात से और क्रुद्ध हो गई, बोली—"तुम्हें तो बस अपनी ही पड़ी रहती है, चिड़िया फंसाओगे तो किसके लिए ? लड़का तो इधर नौकरी छोड़कर घर बैठा है।"

यदि इस समय मुनीमजी के सिर पर सौ वज्र एक साथ गिरते तो उन्हें इतनी घबराहट न होती। वे मुंह बा कर रह गये। चेहरे का रंग पीला पड़ गया। देखकर सत्यवती घबरा गई, और

जल्दी से बोली—"पर सेठजी बड़े दयालु हैं, और वे सन्तोषी को फिर से नौकरी में ले लेंगे।"

अंतिम शब्दों ने मुनीमजी पर संजीवनी का काम किया। एकाएक उनकी आंखों की पुतलियां फिर चमक उठीं। वे बोले—"मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं।"

तब पहले सत्यवती ने और फिर सन्तोषकुमार ने सारी परिस्थिति बताई। इतने में लड़कियों में से एक वहां आ गई पर सत्यवती ने उसे आज्ञामूलक इंगित किया, और वह सहमकर वहां से निकल गई। मुनीमजी सारी बात सुनकर बोले—"बेटा नौकरी करो, और धर्म-अधर्म देखो, यह तो नहीं हो सकता। बस अपने मन में अधर्म मत रक्खो। यदि तुम्हारा साहब धर्म नहीं करता, तो इससे तुम्हें क्या? पाप तो उसी को लगेगा।

बीच में बोलते हुए सन्तोषकुमार ने कहा—"पर अधर्म तो मेरे हाथ से होता है, मैं उसे जानबूझ कर कैसे करूं?"

मुनीमजी बोले—"ऐसा कहो, तो फिर दुनिया में रहना ही मुश्किल हो जाय। कोई भी व्यापार या व्यवसाय ऐसा नहीं है जिसमें अधर्म न हो। चोरबाजारी शब्द अब चला है, पर चोर-बाजारी तो हमेशा से रही है। चोरबाजारी में अधिक-से-अधिक बीस गुना मुनाफा होता है, पर हमेशा से ऐसे-ऐसे सैकड़ों कारो-बार रहे हैं जिनमें मुनाफा इससे अधिक रहा है। तुम सब कुछ जानते हो, बी० ए० पास हो, मैं तुम्हें क्या समझाऊं? मुझे ही लो। छोटा-सा फर्म है, पर सैकड़ों बेइमानियां होती हैं, और मैं जान-बूझकर सारा गलत हिसाब लिखा करता हूं। यदि कहूं कि यह बात गलत है, तो फौरन निकाल दिया जाऊँगा, लाला को तो और आदमी मिल जायेंगे, बीच में मैं रोटी से मारा जाऊंगा। यदि इस प्रकार बारीकी से ही धर्म-अधर्म की छानबीन करनी हो, तब तो लंगोट लगाकर हिमालय में चला जाना ही

अच्छा है। पर पेट तो वहां भी साथ जायगा। वहां भी लोगों का दान लेना पड़ेगा। यदि सूक्ष्म विचार करो तो दान लेना भी हंसी नहीं है क्योंकि अधर्म से प्राप्त धन या अन्न का दान नहीं लिया जा सकता। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो सम्पूर्ण रूप से धार्मिक हो। फिर यह परिस्थिति हुई कि बिना खाये मरो।"

सन्तोषकुमार ने तर्क के लिए कहा—"पर यदि वह साधु जंगल के फल-फूल बटोरकर खाये तब तो वह अधार्मिक न होगा।"

मुनीमजी मानो इस बात के लिए तैयार ही थे, उन्होंने फौरन कहा—"पर यह याद रखो कि जंगल भी किसी-न-किसी के हैं। किसी का नहीं तो सरकार का है। इसलिए जो भी बिना कहे या बिना खरीदे उसका एक भी फल तोड़ता है, या एक भी लकड़ी लेता है, वह चोर है।"

सन्तोषकुमार को इस तर्क के आगे कुछ सूझा नहीं। फिर भी उसने कहा—"पर जन-बूझकर तो मक्खी नहीं निगली जाती पिताजी।"

"तुम्हें मक्खी निगलने को कौन कह रहा है, पर संसार में कर्म तो सबको करना ही पड़ेगा। भीष्मपितामह यह जानते हुए भी कि दुर्योधन अन्यायी है और उसका पक्ष अधर्म का है, उसकी नौकरी करते रहे, और उसी की नौकरी में उन्होंने प्राण दे दिया। उनको अधर्म थोड़े ही लगा। वे तो स्वर्ग में गये। यदि मालिक तुम से अधर्म करवाता है, तो तुम्हारी जिम्मेदारी नहीं है।"

सत्यवती ने जब देखा कि पिता-पुत्र की बातचीत इस परिस्थिति में पहुंच चुकी है कि पुत्र वश में लाया जा चुका है, तब वह उठी, और जाकर गृहकार्य करने लगी। हां, उसके कान इसी तरफ लगे रहे। बड़ी रात तक पिता-पुत्र में बहस होती रही। मुनीमजी इस बात पर इतने लड़े जितना कि वे लड़ सकते थे।

उन्होंने अपनी वृद्धता की बात बतलाई, और साथ ही दो बहनों की शादी बाकी है यह बतलाया। यह भी बतलाया कि बस उनकी तथा सन्तोषकुमार की मां की यही लालसा रह गई है कि वे जल्दी-से-जल्दी पुत्र-वधू का मुंह देखें।

आठ

सन्तोषकुमार बनारस लौटकर अपनी नौकरी पर हाजिर हो जायगा सेठ अमोलकचन्द शायद यही आशा करते थे। भीतर-भीतर वे हंसे कि नहीं पता नहीं, पर ऊपर से उन्होंने ऐसा व्यवहार रक्खा मानो सन्तोषकुमार मामूली छुट्टी पर गया हो, और वहां से आकर अपने काम में लग गया हो। अमोलकचन्द ने जो ऐसा व्यवहार किया तो वह सन्तोषकुमार को और भी अखरा। उसी दिन से उसने अपना पुराना कार्यक्रम जारी कर दिया। ज्योंही फ़ुर्सत मिलती, त्योंही पुस्तकालय में पहुंचता और वहां विज्ञापनों को पढ़कर अपने नोटबुक में कुछ पते लिख लेता, और फिर रात को उन पतों पर अर्जियां भेजता। वह चाहता था कि दूसरी नौकरी मिलते ही इस नौकरी को फौरन छोड़ दे। पर एक सप्ताह तक बराबर अर्जियां लिखने पर भी कहीं से कुछ उत्तर नहीं आया। इस पर वह कुछ निराश हो गया, और एक दिन वह अपने दैनिक कार्यक्रम को भुलाकर पास के एक पार्क में जाकर बैठ गया।

वहाँ वह सारी गुत्थियों को सुलझाने के लिए गया था। सेठ अमोलकचन्द ने अपने पहले के धन्धे जारी रक्खे थे। पहले किसी काम पर भेजते समय वे सन्तोषकुमार हो एक भाषण-सा देते थे जिसमें देश की दशा के साथ मिलाकर इस कार्य को ऐसे रंग में रखते थे कि मानो यदि यह कार्य न हुआ तो देश की बड़ी भारी हानि हो जायगी। पर इधर उन्होंने इस प्रकार के भाषण देना छोड़ दिया था। केवल काम बता देते थे, और उसमें क्या-क्या सावधानी करनी है यह बता देते थे। इसके अतिरिक्त वे और कुछ नहीं कहते थे। पहले उसका और सेठजी का सम्बन्ध बहुत-कुछ एक स्वयंसेवक तथा उसके नेता का सम्बन्ध था। कम-से-कम उस पर यह मुलम्मा चढ़ा रहता था। पर अब इस प्रकार की कोई बात नहीं थी। सेठजी अपनी विचक्षण बुद्धि से यह समझ चुके थे कि सन्तोषकुमार भले ही छटपटावे, कहीं जा नहीं सकता। वे उसे अब दूसरे नौकरों की तरह एक नौकरमात्र समझते थे। ये सारी बातें सन्तोषकुमार के लिए बहुत दुःखद थीं। उसकी मानसिक अवस्था जैसी थी, उसमें शायद सेठजी की तरफ से कुछ ढोंग उसे फायदा पहुंचाता क्योंकि उस हालत में उसके मन में एक शंका बनी रहती कि क्या पता सेठजी अच्छे उद्देश्य से ही सारे काम कर रहे हों। इस ढोंग को वह एक तिनके के सहारे के रूप में पकड़ लेता। पर अब इसकी भी कोई गुंजाइश नहीं थी।

उसने बचपन से यही सुना था और पढ़ा था कि सत्य बोलो, झूठ मत बोलो, इत्यादि इत्यादि, पर यहां तो अजीब हालत थी। पिता को सत्य कहा तो वे नाराज़ हुए, और धर्म के नाम पर अधर्म की बात कहने लगे। और सो भी किससे? खास अपने बेटे से। उन्हें तो जो-कुछ मतलब था, वह यह था कि सन्तोषकुमार याने परिवार फले फूले। इसके लिए वे सब तथ्यों की

ओर से आंख बन्द करने के लिए तथा धर्मशास्त्रों के वचनों को तोड़ने-मरोड़ने के लिए तैयार थे। माता की भी हालत यही थी। बहनें अभी छोटी थीं, पर उन्होंने भी जबसे यह सुना कि भैया नौकरी छोड़ना चाहते हैं, तब से वे उसकी तरफ अजीब मुंह फुलाकर ताकती थीं मानो सत्य का नहीं, उन्हीं का खून हो रहा हो। घर-बिरादरी में इस बार जो उसकी अधिक क़दर हुई थी, वह क्यों हुई थी, यह उससे छिपा नहीं था।

पार्क के बेंच पर बैठे बैठे वह इन्हीं सारी बातों को सोचने लगा, और उसका मन एक तरह की वितृष्णा से भर गया। उसे बड़ा अजीब मालूम पड़ा कि इस दुनिया में रहकर वह सत्य की रक्षा कैसे कर सकता है। वह अपने को कोई ऋषि-मुनि नहीं समझता था, पर यह चाहता था कि ईमानदारी के साथ एक साधारण व्यक्ति का जीवन व्यतीत करे। पर उसके लिए मौका नहीं दिखाई पड़ता था। अर्जियों का उत्तर ही नहीं आता था। माता-पिता भले ही नापसन्द करें, वह नौकरी छोड़ने के लिये तैयार था, पर जीना तो आवश्यक था। आखिर सूखी रोटी और दाल के लिये कुछ पैसे चाहिये, फिर मकान किराया है और अन्य खर्च हैं। इन सबके लिये भी कम-से-कम पचास रुपये तो चाहिये ही। इसी प्रकार वह सोचता जाता था, पर किसी नतीजे पर नहीं पहुंच पा रहा था।

पार्क में बैठे-बैठे रात अधिक हो गई, तब वह अपने घर की ओर चला। यद्यपि समस्या जहां की तहां थी, पर खुली हवा में देर तक बैठने के कारण उसका मन पहले से अधिक शान्त हो गया था। जब वह घर पहुंचा तो उसे भूख भी अच्छी लगी थी। जल्दी से उसने चूल्हा जलाकर खिचड़ी रख दी, और चूल्हे के पास बैठकर जो भी पुस्तकें उसके हाथ लग गई उसी को उलटने-पुलटने लगा। यद्यपि उसके हाथ में पुस्तक थी, पर उसका मन

खिचड़ी की ही ओर था। खिचड़ी में उबाल आ चुकी थी, और अब उसके होने में देर नहीं थी।

इतने में बाहर चार-पांच आदमियों की आहट सुनाई पड़ी, और एक व्यक्ति ने ज़ोर से पुकारा "सन्तोष बाबू, सन्तोष बाबू !"

सन्तोषकुमार यंत्रचालितवत् उठ खड़ा हुआ। उसका कलेजा धक् से हो गया। बाहर से फिर आवाज़ आई सन्तोषकुमार जी। यह आवाज़ बिलकुल ही अपरिचित थी। तो क्या पुलिसवाले आ गये। एक क्षण के लिए वह बिलकुल हतबुद्धि हो गया। खिचड़ी की बात तो बिलकुल ही भूल गया। एक बार सोचा कि दूसरी तरफ से दीवार फांद कर निकल जाय, फिर न मालूम क्यों मन में जिद्द की भावना आ गई और उसने सोचा गिरफ्तार हो जाना ही अच्छा है। जो लोग उससे बेईमानी करवाकर अपनी दुनिया बनाना चाहते थे, उन्हें वह एक शिक्षा देना चाहता था। इन्हीं भावनाओं के वशवर्ती होकर उसने उत्तर दिया...कौन ?...और फिर आगे बढ़कर दरवाज़ा खोलकर खड़ा हो गया।

चार-पांच आदमी थे, और अपरिचित थे। उसने कहा— "कहिये आप लोग क्या चाहते हैं ?"

कहने को तो उसने यह कह दिया, पर आंखों से वह ताड़ता रहा कि ये लोग सादी वर्दी में पुलिस वाले हैं या और कोई। यद्यपि उसने गिरफ्तार होना निश्चित कर लिया था, फिर भी उसे कुछ भय-सा मालूम हो रहा था। बोला—"कहिये न। मैं ही सन्तोषकुमार हूं।"

आये हुए सभी आदमी घबड़ाये हुए-से थे। इनमें से एक ने जो सबसे अधिक शिक्षित मालूम होता था, आगे बढ़कर कहा–"हम लोग आपके पास कुछ बहुत ज़रूरी काम से आये हैं।"

सन्तोषकुमार की जैसे जान-में-जान आई, और वह समझ

गया कि ये और चाहे कोई भी हों, पुलिसवाले नहीं हैं। जब यह निश्चय हुआ तो एक बार तो उसे शक हुआ कि शायद लड़कीवाले हों। खुद-बखुद उसका तेवर चढ़ गया और बोला—"कहिये मैं आप लोगों की क्या सेवा कर सकता हूं।" इतना कहा ही होगा कि उधर उसका ध्यान खिचड़ी की ओर गया और वह जल्दी से खिचड़ी उतारकर इन लोगों के सामने आ गया। बोला—"कहिये...नौकर छुट्टी पर गया है, इसलिये स्वयंपाक करना पड़ रहा है।" बिना सोचे-समझे ही यह झूठ उसके मुंह से स्वयं ही निकल गया। उसे स्वयं ही आश्चर्य हुआ कि कैसे वह इस भयंकर झूठ को एक सांस में बिना कुछ झिझके कह गया।

पर उसके पास आनेवालों ने न खिचड़ी की तरफ ध्यान दिया और न नौकर की छुट्टी जानेवाली बात पर ध्यान दिया। जो व्यक्ति अगुवा बनकर आया था, वह बोला—"मेरे भाई का नाम उदयनारायण है। सेठ अमोलकचन्द के यहां नौकर है, आप जानते होंगे। कल वह और लोगों के साथ सेठजी के किसी काम से गया था, वहीं गिरफ्तार हो गया।" कहकर उसने अपने साथियों की तरफ देखकर कहा—"इन लोगों के भी आदमी गिरफ्तार हो गये हैं। आज हम लोग जेल में मिलने गये, तो सबने बताया कि सेठजी ने जान-बूझकर लोगों को गिरफ्तार कराया है। उन लोगों ने कहा कि आप इस मामले में दिलचस्पी लें तो सेठजी उन लोगों को छुड़ा लेंगे।"

सन्तोषकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ, बोला—"सेठजी ने अपने आदमियों को गिरफ्तार करा दिया? यह बात तो कुछ समझ में नहीं आती। इसमें तो उन्हीं को घाटा है।"

वह आदमी बोला—मैं भी यही समझता हूँ, पर उदयनारायण और उसके साथियों ने कहा कि खास पुलिसवालों से

यह बात मालूम हुई है। उदयनारायण ने कहा है कि किसी दिन उन लोगों ने आप से जबरदस्ती दस्तूरी ली थी, तभी से सेठजी उन पर नाराज़ थे, और मौका बनाकर सबको गिरफ्तार करा दिया।"

सन्तोषकुमार को अब विश्वास हो गया कि बात ऐसी ही हो सकती है। जरूर ऐसा हुआ होगा। उस सेठ के लिए कोई भी कर्म ऐसा नहीं है जो वह कर न सके। उसने कहा—"अब आज तो रात अधिक हो गई है, भला सेठजी क्यों मिलने लगे? कल मैं इस सम्बन्ध में देखूंगा कि क्या किया जा सकता है।"

इतना कहने पर भी वे लोग काफी देर तक खड़े-खड़े उससे प्रार्थना करते रहे कि कल वह अवश्य मिले। एक व्यक्ति तो जाते समय रो पड़ा। उसका छोटा भाई गिरफ्तार हुआ था। रोकर कहने लगा "हनुमान तो एक दिन के लिये भी परदेश में नहीं रहा, वह जेल में कैसे रहेगा।"

सन्तोषकुमार ने समझा-बुझाकर सबको विदा किया, यद्यपि वह मन में जानता था कि वह शायद ही कुछ कर पावे, क्योंकि सेठजी जिस बात को करते हैं बहुत सोच-विचार कर करते हैं, और जब वे एक बार किसी काम के बीड़े को उठा लेते हैं तो वे किसी प्रकार भी उससे विचलित नहीं हो सकते। इन्हीं बातों को सोचते उसने खिचड़ी में छौंक लगाई और खाने लगा। पर अब उसकी सारी भूख मर चुकी थी। फिर भी वह अभ्यासवश खाता गया।

नौ

जब सन्तोषकुमार बनारस लौट गया तो मुनीम जी ने इसे अपनी वैयक्तिक विजय समझी। घर में वे सबसे एक एक बार लड़े, और बाहर सड़क पर निकल कर काल्पनिक दुश्मनों को फटकार बताते हुए बोले—"चाहे जो साला जितना करे, यहां तो यह तय कर लिया है कि अपने घर के सामने जब तक मोटर खड़ी न देखूंगा तब तक दम न लूंगा। अभी तो लोग मकान की मरम्मत से जल रहे हैं, पर अगर दूसरा मकान ऐन शहर बनारस के बीच न बनवाया, तो मेरा नाम बनवारीलाल नहीं।" कहकर चश्मा सीधा करते हुए जमीन पर लाठी फटकारी।

उधर से गांव के एक पण्डित रामरहिन पांडे जा रहे थे। उन्हें इस प्रकार क्रोध में देखकर बोले—"क्या बात है मुनीमजी? नाराज क्यों हो रहे हो?"

पालागी करते हुए मुनीमजी ने कहा—"लड़के की नौकरी लगी है, बस इसी पर सारे दुश्मन जल रहे हैं। लेकिन मैं भी

कोई कच्चा खिलाड़ी नहीं हूं ! कह रहा हूं कि जाको राखे सांइया मारि न सके कोई।"

रामदहिन ने हंसते हुए कहा—"आखिर बात क्या है, बताते क्यों नहीं ? क्या हुआ ?"

—"हुआ कुछ भी नहीं, बस लोग खामखाह जलते हैं। कहते हैं कि मेरा बेटा ब्लैकमार्केट में पैसा पैदा कर रहा है। मैं कहता हूं कि अव्वल तो यह बात झूठ है, और करता भी है तो किसी के बाप का क्या ? वह तो साहब के यहां नौकर है, अब साहब धर्मात्मा है कि नहीं है, यह तो वह जाने और उसका ईसामसीह जाने।"

दोनों बड़ी देर तक काल्पनिक दुश्मनों के विरुद्ध बातचीत करते रहे। रामदहिन का एक लड़का अबकी बार मैट्रिक की परीक्षा देनेवाला था, इसलिए उसको अभी से फिक्र हो गई थी कि उसे कहीं नौकरी मिल जाय। उसका इरादा था कि उसका लड़का भी कहीं साहब के यहां नौकर होजाय। इसलिए वह चाहता था कि सन्तोषकुमार के जरिये से कार्य सिद्ध हो। जाते समय रामदहिन ने अपना असली मतलब बता भी दिया। मुनीम जी ने उसकी प्रार्थना मंजूर कर ली, पर बोले—"सन्तोषी तो सब कुछ करेगा, पर उसका जो साहब है, वह बड़ा गुस्सेवर है।" फिर उसने रामदहिन को साहब के गुस्से के कुछ किस्से बतलाये—"एक बार साहब घोड़े पर चढ़कर किसी पेड़ के नीचे से जा रहे थे कि ऊपर से एक पत्ता गिरा। इस पर साहब ने फौरन कुर्सी-मेज मंगवाकर वहीं पर अदालत की, और पेड़ को तीस बेंत लगाये गए।" रामदहिन इस बात को सुनकर प्रभावित तो हुआ, पर विशेष खुश नहीं हुआ कि ऐसे क्रोधी व्यक्ति के नीचे अपने दुध-मुंहे लड़के को नौकरी के लिए भेजना ठीक नहीं है। शायद मुनीम जी उसके इस विचार को ताड़ गये, इसलिए बोले—"पर जैसा

Morarji Nehru

गुस्सैवर हैं वैसे ही आशुतोष हैं। बात की बात में सन्तोषी को ४० रु० की तरक्की दे दी।"

रामदहिन इस अन्तिम कहानी को सुनकर पहले से अधिक प्रभावित हुआ, और मंसूबे बांधता हुआ चला गया।

मुनीमजी इसी प्रकार औरों से भी बर्ताव करते रहे मानों उन्होंने कोई शेर मारा हो। सत्यवती यह सारी बात देख रही थी, पर अपनी आदत के मुताबिक चुप थी। अपने पति के साथ उसका तरीका यह था कि ऐसे मौकों पर वह मुनीमजी को खूब सनसनाने, हल्ला मचाने और बोलने देती थी। यहां तक कि खुद भी दो एक बात सह लेती थी। पर जब समझती थी कि अब अति हो चुकी, तब एकदम से ब्रेक कस देती थी। ऐसा ही उसने इस बार भी किया। जब मुनीमजी दो दिनों तक लगातार शेखी बघारते रहे, और कहीं इसको मार तो कहीं उसको गाली देते रहे, तो सत्यवती भर पाई। संध्या का समय था, मुनीमजी बही-खाता लिखकर काफी देर से लौटे थे, पर अभी घर के अन्दर नहीं आये थे। बैठक में ही बैठकर न मालूम किसी व्यक्ति से शेखी मार रहे थे। कह रहे थे—"मैंने सन्तोषी को कहा कि अबकी बार मैं साहब से मिलने चलूंगा। यहां कस्बे में पड़े-पड़े कोई क़दर नहीं है। घर की मुर्गी साग बराबर। पर एक बार साहब के सामने पहुंच जाऊं, तो बस सारा काम बना लूं...इत्यादि इत्यादि।"

सत्यवती देर तक भीतर से इन बातों को सुनती रही। एक बार उसने पीछे के दरवाजे से झांक कर देखा कि आखिर यह कौन व्यक्ति है जिससे यह बातें कही जा रही हैं। एक बार देखा, दो बार देखा, पर पहचान नहीं पाई कि कौन है। मुनीमजी साहब की बातों में मशगूल थे। बीच-बीच में वे उस युग का रोना रो रहे थे जब देश भर में साहब छाये हुए थे। वह व्यक्ति कुछ

विशेष बोल नहीं रहा था, बीच-बीच में दो-चार वाक्य कहता था, जिनका अर्थ समझ में नहीं आता था। देखने से पढ़ा-लिखा आदमी मालूम होता था। हाथ के पास एक चमड़े का बैग-सा कुछ था जो सत्यवती के लिये बिलकुल ही नई चीज थी। जब मुनीमजी देर तक बोल चुके, तब उस व्यक्ति ने कहा—"इन्हीं सब बातों से तो और भी जरूरी है कि आप अपना जीवन बीमा करवा लें। आपकी जिम्मेदारियां इतनी अधिक हैं कि आपको हर समय भविष्य के विषय में सोचना चाहिये। यह देखिये हमारी इस पालिसी की शर्तें कितनी अच्छी हैं"...कहकर उसने बैग से एक कागज निकाला और उसे पढ़कर सुनाना शुरू किया। मुनीमजी अब चुप थे और वह बीमा कम्पनी का एजेन्ट बोल रहा था। मुनीमजी बीच-बीच में साहब की बात छेड़ देते थे, पर अब वह एजेन्ट उन्हें अधिक मौका नहीं दे रहा था। वह अपनी ही हांकता जा रहा था।

सत्यवती ने छिपकर देर तक दोनों की बातें सुनीं। कागज निकालते देखकर उसने समझा शायद कोई कुण्डली वगैरह हो पर उसे ऐसी बातों का काफी तजरबा था और थोड़ी ही देर में वह समझ गई कि बात कुछ और है। उसके मन में तरह-तरह के संदेह उत्पन्न हुए कि न मालूम यह व्यक्ति कौन है, और मुनीमजी को किस बात के लिये समझा रहा है। यद्यपि मुनीमजी अपने को यदि दुनिया का सबसे अकलमन्द आदमी नहीं तो अपने कस्बे का सबसे अकलमन्द आदमी समझते थे, पर सत्यवती उन्हें निरा बुद्धू और पोंगा समझती थी। उसने बीमा कम्पनी का नाम नहीं सुना था, वह अपने ढंग से समझ गई कि यह व्यक्ति मुनीमजी को ठगना चाहता है। इस पर वह और भी चौकन्नी हो गई।

मुनीमजी को बहुत दिनों बाद एक सहानुभूतियुक्त श्रोता

मिला था। यद्यपि इस समय पासा पलट चुका था, और वे स्वयं ही श्रोता हो रहे थे, फिर भी उन्हें खुशी थी कि इतने विद्वान व्यक्ति के साथ वे विचार-विनिमय कर रहे हैं। सूट पहने हुए किसी भी व्यक्ति को मुनीमजी बिना और कुछ देखे पहचान लेते थे कि वह विद्वान जरूर होगा। साहब नहीं तो उसपर साहब की झांई तो पड़ी है। मुनीमजी तो बीमा कम्पनी के एजेन्ट से समय काटने के लिए तथा अपने अभिमान रूपी गदहे लहलहाते हरे खेत में चराने के लिए बात कर रहे थे, पर बीमा कम्पनी का एजेन्ट अपनी ही घात में था। वह अपने ढंग का बहुत बुद्धिमान मनोवैज्ञानिक था, और समझ चुका था कि मुनीमजी किस प्रकार के व्यक्ति हैं। वह उनके अभिमान को जाग्रत करके भी अपना काम बनाना चाहता था।

मुनीमजी कुछ नीम राजी हो चुके थे, कह रहे थे—"मैं तो यह सब कुछ जानता नहीं, अबकी लड़का आयेगा तो उसके जरिये से साहब से पुछवाऊंगा कि बीमा करना चाहिए या नहीं।"

..."अजी सब साहब लोग बीमा करवाते हैं। कोई साहब ऐसा नहीं होता जिसका जीवन बीमा किया हुआ न हो।"

मुनीमजी दांत से जीभ काटते हुए बोले—"अब आप तो इधर आते ही रहेंगे, साहब से पूछ लूंगा।"

उधर सत्यवती को रसोईघर में जाना था। अब वहां जाना टाला नहीं जा सकता था। वह एकाएक पीछे के दरवाजे से प्रकट होती हुई बोली—"साहब नहीं साहब के बाप कहें मैं कहती हूं कि तुम बीमा खरीद नहीं सकते। घर में भूंजी भांग नहीं है, और चारों तरफ डींग मारते फिरते हो। बीमा खरीदोगे, मोटर खरीदोगे न मालूम क्या-क्या खरीदोगे"—कहकर उसने बातों के उपयुक्त मुंह बनाया। •

मुनीमजी को स्वप्न में भी यह ख्याल नहीं था कि सत्यवती उनकी लनतरानियों को सुन रही थी। वे बड़े मजे में आत्मविस्मृत होकर बातें कर रहे थे।

स्थान, काल, पात्र का विचार बिलकुल जाता रहा था। ऐसे समय में सत्यवती को इस प्रकार अचानक प्रकट होकर रंग में भंग करते हुए देख वे झुंझला गये। पर यह झुंझलाहट व्यर्थ थी।

वे चुप रहे। जमीन की तरफ देखते रहे मानों कोई बुरा काम करते हुए पकड़े गये हों।

सत्यवती के आगे उनकी एक नहीं चलती थी। शादी के दिन के कुछ दिनों बाद से ही यह बात थी। इस परम तथ्य को उन्होंने मन-ही-मन स्वीकार भी कर लिया था। फिर जब से सन्तोषकुमार नौकर हो गया था, तब से सत्यवती के पैर जमीन पर और भी नहीं पड़ते थे।

वह यही समझती थी कि उसी के कारण सन्तोषकुमार जो बना सो बन पाया। इस मामले में वह मुनीमजी को कोई हिस्सा देने को तैयार नहीं थी। इस से मुनीमजी बहुत दुखी रहा करते थे।

माना कि उन्होंने सन्तोषकुमार के एन्ट्रेन्स के आगे पढ़ने का विरोध किया था, पर यह जो विरोध किया था सो किसलिए किया था ?

इसलिए किया था न कि परिवार को उसकी कमाई के पैसों की जरूरत थी। नहीं तो उन्हें क्या बुरा लगता था कि बी० ए० पास का बाप कहलायें। इस बात को उन्होंने कई बार सत्यवती को समझाकर अपनी कालिख धोनी चाही थी। पर सत्यवती ने उनकी इस कथित अक्ल की बात को अपने पास

उसी तरह फटकने नहीं दिया जैसे कोयला अपने पास सफेदी को आने नहीं देता।

सत्यवती मुनीमजी की स्त्री थी। पर वह धीरे-धीरे उनकी अभिभाविका बन चुकी थी।

जिस समय शादी हुई थी, उस समय के बाद कुछ ही दिनों तक मुनीमजी की श्रेष्ठता रही। तब वह सरल बालिका थी। पर ज्यों ही पहली सन्तान उत्पन्न हुई, एकाएक सत्यवती का पलड़ा भारी हो गया।

प्रत्येक सन्तान के जन्म के साथ सत्यवती का पलड़ा भारी होता गया। यह बात कैसे हुई, क्यों कर हुई इसका हिसाब बताना मुश्किल था।

पर था यह एक तथ्य इसमें सन्देह नहीं।

सन्तोषकुमार के नौकर हो जाने से जैसे इस मामले में सत्यवती का डबल प्रमोशन हो गया हो। मुनीमजी तो जैसे रात भर में वामन हो गये थे।

फिर भी मुनीमजी ने अपने सम्बन्ध में यह मत कायम कर लिया था कि वे पढ़े-लिखे हैं, और सत्यवती जाहिल। इस मत को वे मन में पोषण करते रहे। यह धारणा मानों उनके अपने अस्तित्व के लिए एक रक्षाकवच अथवा रक्षायंत्र के रूप में थी। इसके बिना उनके लिए जीवन दूभर होता।

इसलिये इस समय उन्होंने जो सिर नीचा कर लिया, और नाखून से चौकी पर बिछी हुई दरी को खुरचने लगे, यह केवल घबराहट या भय का परिचय नहीं था। इसकी गहराई में यह भी भावना छिपी हुई थी कि एक पागल के मुंह क्या लगें।

बीमा का एजेन्ट इन बातों को नहीं समझ सकता था। उसे मुनीमजी अजीब पोंगा मालूम हुए कि इस प्रकार काम की बात में भी स्त्री को बीच में पड़ने देते हैं। उसे बड़ा बुरा मालूम हुआ।

वह मुनीमजी से अधिक पौरुष की आशा करता था। मन ही मन उसे मुनीमजी से बड़ी घृणा मालूम हुई। वह तो अपनी स्त्री को इतना महत्व नहीं देता था।

पर यहां वह धर्म प्रचार करने थोड़े ही आया था। उसे तो करना था धन्धा। धन्धे में यह थोड़े ही देखा जाता है कि रुपया कहां से आ रहा है। उसे तो किसी तरह मुनीमजी से जीवन बीमा करवाना है। यदि मुनीमजी को यही पसन्द है कि जोरू के गुलाम बने रहें, तो उसे इससे क्या लेना या देना है। उसकी बला से। उसने दुनियाभर का ठेका थोड़े ही ले रक्खा है।

मुनीमजी जानें और उनका काम जाने और जाने सत्यवती। वह क्यों खामखाह दाल-भात में मूसरचन्द बने। उसे तो बस बीमा करवाने से मतलब है।

व्यापारी हंसी से चेहरे का एकाएक उद्भासित करते हुए सत्यवती को सम्बोधन करते हुए वह बोल पड़ा—"मां जी, आप इन बातों में न पड़ें। आप इन बातों को समझेंगी नहीं। आप यकीन रखें कि मैं इनकी भलाई के लिये कह रहा हूं। और हां इसमें सिर्फ इनकी ही नहीं सारे खानदान की भलाई है।"

सत्यवती उससे बोलने के लिये तैयार नहीं थी। इसलिए झिझकी। पर उसे यह बहुत बुरा मालूम हुआ कि वह उसे किसी लायक नहीं समझता। कहता क्या है कि इन बातों में न पड़े, आप इन बातों को समझेंगी नहीं। जैसे यह कोई बहुत गूढ़ बात हो। वह किसी तरह यह मानने के लिये तैयार नहीं थी कि मुनीमजी जिस बात को समझ सकते हैं, वह उसे समझ नहीं सकती।

और यह मूआ कहां से आया बड़ा समझदार। कोट पतलून पहनने से कोई इसमें सुर्खाब के पर थोड़े ही लग गये। बड़ा आया है नहीं तो।

अब तक सत्यवती के मन में जो क्रोध मुनीमजी की बातों को सुनकर एकत्रित हो रहा था, वह मानों लपट देकर एकाएक सुलग उठा।

वह बोल उठी—"इसमें भला कौन-सा ऐसा नुकता है जो मैं नहीं समझ सकती। मैं गिटपिट नहीं कर सकती, इसी से तुम समझते हो कि मैं नहीं समझ सकती। वाह! इसमें समझने की बात क्या है? तुम एक चीज को बेचने के लिए इनको पटा रहे हो, और ये बिना कुछ समझे-बूझे लट्टू हो रहे हैं। मैं तुम्हें देखकर ही पहचान गई थी कि तुम किस किस्म के आदमी हो। तुम तो मुझे एक मदारी-से मालूम देते हो।"

जीवन बीमे का एजेन्ट चौकन्ना हो गया, बोला—"मदारी? मदारी कैसा? मैं तो नहीं जानता मदारी किसे कहते हैं।"

"मदारी नहीं जानते। खूब जानते हो। तभी तो इन्हें सीधा पाकर बंदर बनाकर नचाना चाहते हो। मैं कहती हूं कि ये काफी नाच चुके, अब तुम इन्हें बख्शो। समझे मेरे रहते तुम्हारा मदारीपन चल नहीं सकता। ये कुछ खरीदेंगे नहीं।"

मुनीमजी को यह सारी उपमा बहुत बुरी मालूम पड़ी। वे कुछ कहना ही चाहते थे। सत्यवती की ललकार तो वे यों ही रोज सुना करते थे, पर इस भले आदमी के सामने उनका चेहरा तमतमा उठा। परकुछ सोचकर शायद वही बात कि पागल के क्या मुंह लगा जाय संभल गये।

फिर भी चेहरा तमतमा उठा था, पर अन्त तक संयम की विजय हुई। बीमा कम्पनी के एजेन्ट ने मुनीमजी को देखा कि ये कुछ कहें भी तो। कहां इस देहातिन के पाले पड़ गया। उसने तैश दिलाने के उद्देश्य से मुनीमजी को देखा, पर इसका उल्टा असर हुआ।

मुनीमजी एकाएक संभल गये, पर जहां के तहां बैठे रहे। बीमा कम्पनी का एजेन्ट बैग लेकर पतलून झाड़ते हुए उठ खड़ा हुआ, और उसने पहले तो भागने का रास्ता देख लिया, फिर साहस बटोर कर बोला—"हें हें हें हें जी यह कुछ खरीद नहीं रहे हैं। जीवन बीमा करवाना चाहते हैं—" फिर कुछ सोच कर बोला—"सब साहब जीवन बीमा करवाते हैं। हें हें हें हें जी।" कह कर वह बनावटी हंसी हँसा।

सत्यवती ने अब मैदान को अपने हाथ में ले लिया था। बोली—"यह सब मैं कुछ नहीं जानती। जिसके घर में दो-दो कुंवारी लड़कियां शादी के लायक हो चुकी हों, उसे बच्चों की तरह यह खरीदूंगा वह खरीदूंगा कहना शोभा नहीं देता।"

बीमा का एजेन्ट एक कदम पीछे हट गया, फिर उसने निराशा के साहस से बहुतेरा समझाया कि बीमा करवाना तो बाल-बच्चों की भलाई के लिए है, उसने पति-पत्नी में झगड़ा देख-कर इशारा भी किया कि अब ये कितने दिन के हैं, बीमा कराने पर दूसरों को ही फ़ायदा है, पर सत्यवती ने एक नहीं सुना। वह अपनी ही हांकती रही। अंत में बोली—"मुनीमजी को बुद्धू पाकर ठगने आए हो, मुझे बीमा बेचो तो जानें।"

बीमा के एजेन्ट ने अपनी सारी चालाकियां सत्यवती पर खर्च कर दीं, और बोला—"आप मेरी मां हैं, मैं आपको क्या ठगूंगा—" आदि-आदि, पर सत्यवती ने एक नहीं सुना। मुनीम जी ने जो चुप्पी साध ली सो साध ली। फिर सांस नहीं खींची। सत्यवती से निराश होकर बीमा के एजेन्ट ने मुनीमजी के पुरुषत्व को उभाड़ना चाहा, और बोला कि आप तो सारी बात समझते हैं, पर बनवारी-लाल बुत की तरह बैठे ही रहे। अन्त में बीमा का एजेन्ट उनसे परेशान होकर वहां से चला गया। उसने फिर भी आशा नहीं छोड़ी, सोचा अकेले में मुनीम जी को पकड़ूंगा तो काम बना

लूंगा। उसे उस समय और भी घरों में जाना था।

यद्यपि मुनीमजी ने वीमा कम्पनी के एजेन्ट के सामने अपनी स्त्री को कुछ नहीं कहा था, फिर भी वे मन ही मन बहुत नाराज़ हुए थे। एजेन्ट के जाते ही वे सत्यवती पर बिगड़ पड़े, बोले—"अब थोड़ा-थोड़ा शरीफ़ लोगों ने आना-जाना शुरू किया, तो तुमने उन्हें हंकाना शुरू कर दिया। तुम्हारे घर में अब तक कोई कोट पतलून और टाई लगाया हुआ आदमी आया भी था? अब आया तो उसकी आवभगत करते, उसको कुछ शर्वत पानी पिलाते, सो नहीं विना समझे बूझे हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गई। मैं कोई दुधमुंहा बच्चा थोड़े ही हूं कि मुझे कोई ठग ले जायगा।" कहकर वे उठ खड़े हुए और मुंह-हाथ धोने घर के अन्दर गए।

सत्यवती अपने को विजयी समझती थी, इसलिए आगे कुछ नहीं बोली, और जाकर गृहकार्य में लग गई। उसकी जीभ पर कुछ बातें आ रही थीं "तुम्हारे जमाने में तो कोई कोट पतलून वाला आदमी इस घर में आया नहीं यह लड़के की बदौलत है कि यह दिन देखने को मिल रहा है।" पर जीभ तक ही आकर ही ये बातें रह गई, और उसने कुछ सोच कर उन्हें उच्चारण नहीं किया। वह जाकर गृहकार्य में लीन हो गई। फिर उसे और किसी बात की सुध नहीं रही।

दस

सन्तोषकुमार ने अपने वचन के अनुसार अगले दिन सेठ अमोलकचंद से गिरफ्तार लोगों के सम्बन्ध में कहा। सन्तोषकुमार मन-ही-मन सेठजी की नौकरी छोड़ना तय कर चुका था, और केवल सुविधा के लिए प्रतीक्षा कर रहा था। इसलिए उसने उनके साथ जो बातचीत की उसका लहजा एक अधीन कर्मचारी का लहजा नहीं था। उसने साफ-साफ कहा—"वे लोग तो यही कहते हैं कि आपने ही उन्हें गिरफ्तार कराया।"

सेठजी इस बात को सुनकर आश्चर्य प्रगट करने लगे, बोले —"वाह मेरे ही आदमी और मैं ही उन्हें गिरफ्तार कराऊं। यह खूब रही। मेरे आदमी ही मेरे हाथ-पैर हैं अगर वे नहीं रहते तो मैं तो एक लुंजपुंज मांस का लोथड़ामात्र हूं।"

सन्तोषकुमार ने कहा—"लोग यह भी कहते हैं कि उन लोगों ने दस्तूरी मांगी थी, इसलिए आपने उन्हें गिरफ्तार करवा दिया।" कहकर उसने सेठजी के मुंह की तरफ ऐसे देखा जैसे कुर्सी पर बैठा हुआ न्यायाधीश कठघरे में बंद अपराधी को देखता है।

इस दृष्टि के सामने सेठजी तिलमिला गए। उन्हें बड़े जोर का क्रोध आया। बोले—"लोग कहने को तो सभी कुछ कहते हैं। मैं मुनाफाखोर हूं, चोरबाजारी हूं, और न मालूम क्या-क्या? पर आश्चर्य यह है कि तुमने इन पर विश्वास कैसे किया। क्या तुम मुझसे ऐसी कोई बात देखते हो?" कहकर सेठजी ने उसे चुनौती की दृष्टि से देखा।

सन्तोषकुमार अपने सारे मन से यह विश्वास करता था कि सेठजी पक्के चोरबाजारी हैं, पर जितना भी वह अपने को मुक्त समझे, नौकर होने के तथ्य के कारण उसकी आंखें झपक-सी गईं, और वह फर्श पर बिछी हुई कालीन के फूलों पर नजर दौड़ाने लगा।

सेठजी बोलते गए—"मैं जानता हूं कि तुम्हारे मन में भी मेरे प्रति सन्देह है, पर मैं इस अकारण सन्देह को कैसे दूर कर सकता हूं। वाजिब मुनाफा तो मैं लेता हूं, नहीं तो दुकानदारी क्यों करता? सारा धन लुटाकर सन्यासी न हो जाता।"

सन्तोषकुमार ने इस प्रकार की दार्शनिक बातों में जाना उचित नहीं समझा। उसने कहा—"उन्हें छुड़ाने की व्यवस्था कीजिए।"

सेठजी हहराकर हंस पड़े, बोले—"यही तो नातजर्बेकारी की बात है। न तो मैं उन्हें गिरफ्तार करनेवाला ही कोई होता हूं और न छुड़ानेवाला ही कोई होता हूं। वे किस लिये गिरफ्तार हुए, कब हुए, यह तो मुझे ठीक-ठीक मालूम भी नहीं।"

सन्तोषकुमार ने सेठजी की तरफ एक बार ध्यान से देखा, मानो वह यह जानने की चेष्टा कर रहा हो कि सेठजी कहां तक सच बोल रहे हैं। उससे संक्षेप में उनकी गिरफ्तारी की सारी परिस्थिति बतलाई।

सेठजी सब कुछ सुनकर बोले—"नहीं, मैंने तो उन्हें किसी

काम से नहीं भेजा था। तुम जानते हो मैं जिन कामों में लोगों को भेजता हूं, उनमें कोई जुर्म नहीं होता, बस इतना है कि सरकार से बात छिपाई जाती है।" कहकर उन्होंने सन्तोषकुमार की तरफ देखा कि कहां तक वह उनकी बातों को सही समझ रहा है। पर सन्तोषकुमार के चेहरे से कुछ मालूम नहीं हुआ। वोले—"ऐसा मालूम होता है कि ये लोग अपनी तरफ से कोई काम करने गये थे, और उसी में पकड़े गये।"

सन्तोषकुमार को गिरफ्तार लोगों से केवल इसी कारण सहानुभूति थी कि वे गिरफ्तार हो गये थे, नहीं तो जिस दिन उन लोगों ने उससे एक प्रकार से जबरदस्ती दस्तूरी वसूल की थी, उस दिन से वह उनके सम्बन्ध में कोई उच्च विचार नहीं रखता था। यदि सेठजी बुरे थे तो ये लोग भी कम बुरे नहीं थे। सेठजी तो अपने मुनाफे के लिये लोगों को भूखों मार रहे थे, पर ये लोग तो भाड़े के टट्टू थे। कुछ भी हो वह यह नहीं समझता था कि ये लोग सेठजी से अलग कोई काम कर सकते हैं। उसने अविश्वास की दृष्टि से सेठजी को देखा। फिर बोला—"अब जो कुछ हुआ सो हुआ, अब आप उन्हें छुड़ाइये तो।"

सेठजी ने अप्रत्याशित उदारता से कहा—"क्यों नहीं। अभी तक मुझे कुछ ठीक मालूम नहीं था। मैं यही समझता था कि कहीं बैठकर जुआ-ऊआ खेल रहे होंगे। दस-दस रुपया जुर्माना होगा, इसलिये मैंने कुछ परवाह नहीं की। अब मैं सब कुछ करूंगा, पर एक बात है, वे मेरी तरफ से अपने मन में इस प्रकार मैल क्यों रखते हैं? मुझसे तो यह उम्मीद की जाती है कि मैं उनके लिये सब कुछ करूं, और वे इस प्रकार मेरी बुराई कर रहे हैं। और एक बात है जिसे मैं बिलकुल साफ-साफ कह देना चाहता हूं वह यह कि मुझे इस तरह से दस्तूरी आदि देने में बहुत आपत्ति है। मैं उनसे नाराज़ हूं इस बात को छिपाना नहीं चाहता

मैं उन्हें यह नहीं कहता कि वे मेरी तरह परोपकार पर तुल जायं पर यह भी मैं नहीं चाहता कि वे मेरी कमजोरी का फायदा उठावें। तुम आज जाकर उन लोगों से मिलकर सारी बात साफ कर दो, और इधर मैं पुलिसवालों से मिलकर देखता हूं कि उनका क्या किया जा सकता है।"

कहकर वे उठ गये। सन्तोषकुमार तो जेल में जाकर उन लोगों से मिलने की व्यवस्था करने लगा, और इधर सेठजी ने टेलीफोन से पुलिस के एक बड़े अफसर को जिससे गिरफ्तार लोगों के मुकद्दमे से सम्बन्ध था बुलाया। सेठजी यह तो चाहते थे कि अपने उन कर्मचारियों को कुछ नसीहत दें, पर एक तो वे उनसे हाथ धोना नहीं चाहते थे क्योंकि वे तजर्बेकार थे, दूसरा वे इस मामले को इतना बढ़ाना नहीं चाहते थे कि गिरफ्तार लोगों में से कोई इतना बिगड़ जाय कि वह अदालत के सामने खड़े होकर सेठजी के कारनामों पर रोशनी डालना शुरू कर दे। यद्यपि ऐसे बयानों से कानूनी दृष्टि से सेठजी का कुछ बिगड़ नहीं सकता था पर फिर भी इससे समाज में उनकी मानहानि होती, और साख घट जाती। इन सब बातों को सोच-समझ कर ही उन्होंने सारा काम किया था। वे अपने उन कर्मचारियों को तोड़ना नहीं चाहते थे, बल्कि उन्हें झुकाना चाहते थे।

थोड़ी ही देर में पुलिस का वह बड़ा अफसर सेठजी की कोठी पर पहुंचा। सेठजी ने खड़े होकर हंसते हुए उसका स्वागत किया। बोले—"तकलीफ दी, माफ करना। जरूरी काम है।"

उस अफसर को सारी बातों का पता था, बल्कि उसी के जरिये से सेठजी ने इन लोगों की गिरफ्तारी कराई थी। उसने कहा—"अभी तीन ही दिन लाक-अप में हुआ है, और आप के

कर्मचारी चें बोल गये। सब-के-सब आपके खिलाफ बयान देने पर उतारू हैं।"

सेठजी के माथे पर बल पड़ गये। इसलिये नहीं कि इन बयानों से वे घबरा रहे थे, बल्कि इसलिये कि वे डरे कि यह तो कोई मामला नहीं है, पर यदि सचमुच कोई मामला होता तो ये लोग क्या करते यह साफ मालूम हो रहा था। उन्हें एकाएक यह स्मरण आया कि सन्तोषकुमार चाहे जितना मुंहफट हो, पर उसमें यही गुण है कि वह किसी भी हालत में इन कर्मचारियों की तरह कमजोरी नहीं दिखा सकता था। ये विचार एक क्षण में बिजली की तरह उनके मन में दौड़ गये, पर पुलिस कर्मचारी ने सामने अपनी कमजोरी दिखाना नहीं था, नहीं तो वे पांच की जगह दस मांगते, बोले—"आप तो जानते हैं कि उनके इन बयानों से मेरा कुछ आ-जा नहीं सकता। बस डरता हूं तो एक बात से डरता हूं कि परमात्मा के सामने क्या मुंह दिखाऊंगा, इसलिये यह नहीं चाहता कि इनको कोई नुकसान हो। बस मैं तो इतना ही चाहता था कि इनको कुछ नसीहत हो जाय। सब बहुत शेर हो गये थे। अब पारा कुछ उतरा है यही खैरियत है।"

इसके बाद सेठजी और पुलिस अफसर में थोड़ी देर बातचीत हुई, और यह तय हुआ कि इन लोगों पर सिर्फ इतना ही मुकदमा रक्खा जायगा कि ये लोग रेल के हाते के अन्दर सन्देहपूर्ण परिस्थिति में बिना अनुमति से घूम रहे थे, और उन्हें सौ-सौ रुपया जुर्माना करवा दिया जायगा। सेठजी ने पुलिस अफसर को विदा करते समय उसके हाथों में नोटों का एक पतला-सा पुलिन्दा रख दिया। और स्वयं उसी समय मोटर पर सवार होकर जेल पहुंचे। यद्यपि उस दिन की मिलाइयां खतम हो चुकी थीं, पर जेलर ने उनकी इच्छा के अनुसार उनसे

उन सब लोगों को मिलवा दिया। सेठजी ने उन लोगों को धीरज बंधाया, और कहा कि वे सब कुछ कर रहे हैं, और वे कल शाम तक जरूर छूट जायंगे, शायद दिखावा के लिए उन पर दो-दो रुपये जुर्माना कर दिये जायं। वे लोग यह सुनकर बहुत खुश हुए क्योंकि वे तो कालापानी का खतरा देख रहे थे। सभी लोग सेठजी की तारीफ करने लगे। एक ने जिसने उनके विरुद्ध सबसे अधिक कहा था, बोला—"भक्तवत्सल हैं, कब तक भक्तों की पुकार न सुनते।"

इस प्रकार सबको तसल्ली देकर सेठजी चले गये। अगले दिन यथारीति उन पर मुकदमा हुआ और सौ-सौ रुपये जुर्माने सुनाये गये। कइयों के तो रिश्तेदार वहीं मौजूद थे। उन्होंने घंटे भर के अन्दर जुर्माना अदा कर दिया। बाकी लोग जो नहीं दे पाये, उनकी तरफ से संध्या समय सन्तोषकुमार ने जेल के फाटक पर जुर्माना अदा किया। सेठजी ने उसको रुपये देकर इस कार्य के लिये भेजा था। जब ये लोग छूटकर बाहर आये, तो संतोषकुमार जेल के फाटक पर ही खड़ा था। उसने सेठजी की तरफ से रसीदी टिकट पर इन लोगों से सौ-सौ रुपये की रसीद ले ली। सब लोग सेठजी की उदारता का जयगान करते हुए अपने-अपने घर पहुंचे।

ग्यारह

Eleven -

इस घटना से सन्तोषकुमार का मन और भी उचट गया, और उसने पहले से अधिक मुस्तैदी के साथ नौकरी खाली के विज्ञापन देखना और विज्ञापनों का उत्तर देना शुरू किया। पर वह इस क्षेत्र में सफल नहीं हो रहा था। कहीं से भी किसी पत्र का उत्तर नहीं आता था। फिर भी उसे नौकरी पाना ही था क्योंकि इसी में वह अपनी मुक्ति समझता था। कभी-कभी वह यह सोचता था कि चाहे जो कुछ भी हो जाय, वह नौकरी छोड़ दे, पर गम्भीर विचार की कसौटी पर यह बात ठहर नहीं पाती थी। वह अपने लिये कुछ विशेष चिन्तित नहीं था, यद्यपि इन दिनों एक पेट भरना भी कोई कम समस्या नहीं थी, पर उसे असली चिन्ता थी तो अपने घर के सम्बन्ध में थी। उसने अब की बार घर जाकर जो कुछ देखा था, वह बहुत ही भयानक था। जब उसने नौकरी छोड़ने की बात कही थी, उस समय उसकी माता के चेहरे पर जो आतंक प्रतिफलित हुआ था, वह करीब-करीब पागल मालूम दे गई थी, वह दृश्य कभी भुलाये नहीं

भूलता था। यद्यपि माता उसे बहुत प्यार करती थी, फिर भी......!

इसलिए नौकरी छोड़ने की बात तो तब तक अकल्पनीय थी, जब तक उसे दूसरी कोई नौकरी मिल न जाय। पर दूसरी नौकरी मिलती दिखाई नहीं देती थी। उसने अपने दो-एक भूतपूर्व सहपाठी से अपनी विपत्ति का उल्लेख किया। अव्वल तो वे देर तक यह समझ ही नहीं पाये कि विपत्ति किस बात में है, और जब उन्हें चारबाजारी की बात समझाई गई, तो उन्होंने उसी प्रकार की बातें कहीं जैसा कि मुनीमजी ने कहा था। उन्होंने जो कुछ कहा उसका सारांश यही था कि इसमें कोई अधर्म नहीं है। पर सन्तोषकुमार के मन ने इसे माना नहीं। वह भीतर-ही-भीतर छटपटाने लगा। जब बार-बार उसे निराशा हुई, और कहीं से कोई पत्र नहीं आया, तो वह बहुत खिन्न हुआ। इतना खिन्न हो गया कि एक दिन उसने न तो नये विज्ञापन ही देखे, और न कोई अर्जी ही लिखी। उसने उस रात को कुछ खाना भी नहीं खाया, और पड़े-पड़े सोचता रहा।

ऐसी हालत में न मालूम कब वह सो गया। जब सबेरे उठा तो शरीर कमजोर मालूम हो रहा था, मन में स्फूर्ति नहीं थी और सिर भारी था। उसने सोचा टहलने से शायद तबियत कुछ ठीक हो जाय, इसलिए वह सड़क पर निकल पड़ा। टहलते-टहलते उसे ऐसा मालूम हुआ कि वह एक परिचित घर के सामने है। उसने एक बार जैसे कुछ सोचा, फिर दरवाजा खटखटा कर उस घर में घुस गया। उस मकान के रहनेवाले गृहस्थ शिवकुमार बाबू ने उसका स्वागत किया, बोले—"कहिये आज बहुत दिन बाद आना हुआ।" कहकर उसके चेहरे की तरफ देखते हुए बोले—"कहिये तबीयत ठीक तो है?"

सन्तोषकुमार ने कहा—"नहीं, इधर दो-चार दिनों से तबियत ठीक नहीं रहती" कहकर वह चुप हो गया।

शिवकुमार बाबू समझ गये कि सन्तोषकुमार किसी काम से आया है, पर वह साफ कह नहीं रहा है। उन्होंने अपनी आंखों से उसके चेहरे को तौला, और वे समझ गये कि विपत्ति कुछ गहरी है। एक बार उनके माथे पर बल आ गये, उन्होंने सोचा कहीं यह उधार मांगने तो नहीं आया है। उन्होंने मन ही-मन तय कर लिया कि उधार नहीं देना है। यह व्यक्ति जिस प्रकार से उनके लड़के को मझधार में छोड़कर चला गया था, उसके लिए कभी क्षमा नहीं की जा सकती। लड़के की परीक्षा भी सर पर थी, और वे ट्यूशन की फीस बढ़ाने के लिये भी तैयार थे। इन बातों को सोचकर शिवकुमार बाबू का चेहरा कड़ा पड़ गया। बोले—"कहिये किस कारण आने का कष्ट किया? कहिये मैं आपकी कोई सेवा कर सकता हूं?"

सन्तोषकुमार ने कहा—"सेवा तो मैं ही करना चाहता हूं" कहकर उसने आंख झपका ली।

शिवकुमार बाबू एकाएक सावधान हो गये क्योंकि जबसे सन्तोषकुमार ने ट्यूशन छोड़ा था, तब से उनके पुत्र मदन की पढ़ाई बहुत गड़बड़ चल रही थी। कोई ट्यूटर टिक नहीं पाता था। बोले—"कहिए कहिए, साफ-साफ कहिए। क्या आप मेरे यहां फिर से ट्यूशन करना चाहते हैं?" कहकर उन्होंने उसे गहराई के साथ देखा।

सन्तोषकुमार ने कहा—"जी हां।"

यद्यपि शिवकुमार बाबू बहुत गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे फिर भी उन्होंने कौतूहलवश पूछा—"तो क्या आजकल आप कहीं कोई काम नहीं कर रहे हैं? उस नौकरी का क्या हुआ।"

"जी, नौकरी तो कर रहा हूं, पर उसे आगे करने की प्रवृत्ति नहीं है।"

"क्यों, क्यों, क्या बात है ?"

"कुछ ऐसी ही बात है।"

"फिर भी बताइये तो।"

"कोई खास बात नहीं है।"

पर शिवकुमार बाबू इतने से नहीं माने, और सन्तोषकुमार को सारी बात बतानी पड़ी। सन्तोषकुमार ने जो कुछ बताया उससे यह तो जाहिर होता था कि वह बहुत परेशान है, पर साथ ही वह नौकर होते हुए भी अपने को सेठजी से अलग समझता था, इस कारण उसकी बातों की पृष्ठभूमि में एक दार्शनिकता थी जिससे उसकी परेशानी शहीद की परेशानी की श्रेणी में आ जाती थी।

सब बातों को सुनकर शिवकुमार बाबू बहुत गंभीर हो गये। बोले—"पर मैं तो जानता था कि अमोलकचन्द का फर्म बहुत ईमानदार फर्म है, अमोलकचन्द से भी मैं कई बार मिल चुका हूं, वह आदमी इस प्रकार का है, यह मैं नहीं जानता था।"

ट्यूशन की बात तय हो गई, और अगले दिन से सन्तोष कुमार इस ट्यूशन पर जाने लगा। इस ट्यूशन के ही जाने से उसके मन में तसल्ली हुई, और यद्यपि केवल पैंतीस रुपये ही मिलनेवाले थे, फिर भी उसे ऐसा ज्ञात होने लगा मानों वह उस दिन से स्वतन्त्र हो गया हो। अवश्य घर की फिक्र अब भी बनी हुई थी, पर पहले की वह दम घुटनेवाली अनुभूति अब जाती रही थी।

बारह

अभी वह एक सप्ताह की ट्यूशन कर पाया था कि सेठ अमोलकचन्द ने उसे एकाएक बुलाकर कहा—"आपको तीन दिन के लिए बाहर जाना है। एक खास काम है।" फिर उन्होंने काम का व्यौरा बताया। इसमें कोई नवीनता नहीं थी। कहीं से चावल की ट्रेन आ रही थी, उसी को बीच में खाली करना था।

सन्तोषकुमार समझ गया कि यह चोरबाजारी का काम है। बोला—"मेरी तबियत खराब है, इस समय किसी और को भेज दीजिये" कहकर उसने सिर नीचा कर लिया।

सेठजी बहुत चंट थे, वे समझ गये कि कुछ दाल में काला है। बोले—"काम बहुत जरूरी है, और तुम्हारे सिवा मैं किसी पर इसका भार नहीं दे सकता।"

"यह तो आपकी कृपा है, पर मेरी तबियत खराब है, उसके लिए मैं मजबूर हूं।"

सेठजी बोले—"जो कुछ बात है सो साफ-साफ बताओ, तुम्हारी तबियत कोई ऐसी खराब तो है नहीं" फिर इस बात को

कुछ नरम करने के लिए बोले—"मुझ ही को लो, मुझ में कितनी बीमारियां हैं, गठिया है, मन्दाग्नि रहती है, और अन्य छोटी-मोटी एक-आध बीमारी तो बनी ही रहती है, फिर भी सारा काम करता जाता हूं। क्या करूं काम न करूं तो कोई बैठे-बैठे रोटी नहीं दे देता।"

अन्तिम वाक्यों को सुनकर सन्तोषकुमार का तेवर कुछ चढ़ गया, बोला—"मैं भरसक आपका काम करना चाहता हूँ, पर मजबूर हूं। आप जानते हैं कि ऐसे काम में रात-भर जगना पड़ता है, फिर लारी पर ढोरों की तरह लदकर सौ-दो सौ मील जाना पड़ेगा, और मौसम भी कोई अच्छा नहीं है।"

सेठजी एक क्षण के लिए, जैसे निश्चेष्ट हो गए, पर फौरन ही संभलकर उन्होंने फोन उठाया, और एक नम्बर मिलाकर डाक्टर राममनोहर को बुलाया। डाक्टर ने शायद यही कहा कि अभी आ रहा हूं। सन्तोषकुमार समझ गया कि डाक्टर क्यों बुलाया जा रह है, और वह मन-ही-मन और भी खिन्न हुआ। उसका सारा शरीर भीतर-ही-भीतर अकड़ गया। सेठजी ने फोन को रखते हुए कहा—"अभी डाक्टर राममनोहर आ रहे हैं। वे तुम्हारी परीक्षा करेंगे, और फिर अगर तुम्हारी तबियत खराब पाई गई, तो उसका इलाज कराया जायगा। मैं अपने कर्मचारियों का जीवन अपने जीवन की तरह ही बहुमूल्य समझता हूं।"

सन्तोषकुमार क्या कहता, वहीं पर बुत की तरह बैठा रहा। सेठजी अपने कागजात देखने में लग गये, और ऐसा मालूम हुआ जैसे वे उसके अस्तित्व को भूल ही गये हैं। थोड़ी ही देर में डाक्टर राममनोहर आ गए। सेठजी ने उनका स्वागत किया, और बोले—"यह हमारे एक मित्र हैं, देखिए तो इनको क्या तकलीफ है?"

डाक्टर ने सन्तोषकुमार को आंख उठाकर देखा, और फिर

बोला—"खैर ईश्वर को धन्यवाद है, मैं तो समझता था कि आप बीमार हैं........." कहकर उसने सन्तोषकुमार की परीक्षा शुरू की।

सेठजी बोले—"एक ही बात है, मैं तो अपने मित्रों के जीवन को अपने जीवन से मूल्यवान समझता हूं। इन्हें बाहर जाना है, यह देखिये कि ये लारी में सौ-दो सौ मील की यात्रा कर सकते हैं या नहीं ?"

डाक्टर साहब ने देर तक परीक्षा करने के बाद कहा—"मैं तो इनमें कोई क़सर नहीं देखता, इनको तकलीफ क्या है ?"

सन्तोषकुमार ने कहा—"मुझे कोई तकलीफ नहीं है।"

इसके उत्तर में न सेठजी ने कुछ कहा न डाक्टर ने, दोनों में एक दृष्टि विनिमय हुआ, जो शायद आकस्मिक था। सेठजी ने एक चेक लिखकर रखा था, उसे डाक्टर के हाथ में रख दिया और बोले—"धन्यवाद !"

डाक्टर साहब दोनों को यथायोग्य अभिवादन करते हुए चले गये। सेठजी कुछ देर तक तो चुप रहे, फिर बोले—"अब तो मेरे ख्याल से तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होगी।"

सन्तोषकुमार असली बात कहना नहीं चाहता था, इसलिए उसने कहा—"अब क्या आपत्ति हो सकती है ?"

इन शब्दों को उसने ऐसे कहा मानो कुएं के अन्दर से एक ऐसे आदमी की आवाज आ रही हो जिसका गला चिल्लाते-चिल्लाते बैठ गया हो, अब उसे अपनी आवाज आप भी सुनाई न दे रही हो। सेठजी ने उसे पराजित कर दिया था, और अब ऐसी परिस्थिति थी कि या तो वह नौकरी छोड़ ही देता, या प्रस्तावित काम को करता। और वह अभी तक नौकरी छोड़ने के लिए तैयार नहीं हो पाया था। ट्यूशन का सहारा हो जाने से परिस्थिति कुछ बदली

थी, फिर भी दूसरी नौकरी मिल जाती तभी ठीक था। बाध्य होकर उसे काम में जाना पड़ा।

पहले के सब कामों की तरह यह काम भी सफल रहा। इस काम में उसके जो लोग सहायक थे, उनमें से कई वही थे जिनको सेठजी ने गिरफ्तार करवाया था। इन लोगों ने बड़ी मुस्तैदी से सारा काम किया, और किसी ने दस्तूरी का नाम तक भी नहीं लिया। पर जब सब लोग इस काम को सफलतापूर्वक करके लौट आये, और सेठजी ने हिसाब लगाकर देखा कि उन्हें इस काम पर साढ़े बारह हजार का फायदा हुआ, तो उन्होंने दो सौ रुपये इन लोगों में बंटवा दिए। इसमें सन्तोषकुमार का हिस्सा बीस रुपया बैठता था, पर उसने इसे लेने से इन्कार किया। इस सम्बन्ध में उसके और सारे प्रतिवाद तो व्यर्थ गये थे, उसने असहयोग का जो इरादा किया था वह उस पर भी कायम न रह सका था, पर इन रुपयों को न लेकर उसने अपना क्षीण प्रतिवाद किया। सेठजी तक तो यह बात गई नहीं क्योंकि उसने अपने रुपयों को दूसरों में बांट दिया। इससे केवल उसकी आत्मा को शान्ति मिली।

जब से वह इस काम से लौटा था, तब से वह और भी मुस्तैदी के साथ अर्जियां लिखता जा रहा था। कभी-कभी यह सोचता था कि क्यों न दो-तीन ट्यूशन और कर लिए जांय, जो अपेक्षाकृत आसानी से मिल सकते थे, और सेठ अमोलकचन्द से छुट्टी कर ली जाय, पर उसके मन में ट्यूशन के प्रति अश्रद्धा थी। उसके कारण वह इस निश्चय पर पहुंच नहीं पाता था। वह मन-ही-मन बहुत दुःखी रहता था।

तेरह

१

सन्तोषकुमार के विवाह के लिए मुनीमजी की दौड़-धूप जारी थी। सच तो यह है कि लड़कीवाले ही मुनीमजी के यहां बराबर दौड़ रहे थे। मुनीमजी के मन में जो लक्ष्य था, वह इन उपयाचक होकर आनेवाले लोगों से सिद्ध नहीं होता था। मुनीमजी चाहते थे कि उनके जीवन में जो कमियां रह गई थीं, उन सबको लड़के की शादी के जरिये से पूर्ण कर लिया जाय। इसके अतिरिक्त वे यह भी चाहते थे कि दोनों कुंवारी लड़कियों का ब्याह मुफ्त में हो जाय याने लड़के की शादी से जो आमदनी हो, उससे लड़कियों का ब्याह भी हो जाय, और कुछ बच भी जाय। गहना बर्तन वगैरह तो वे इसके ऊपर चाहते थे। इसीलिए मुनीमजी को काफी दौड़-धूप करनी पड़ रही थी। कहीं सौदा ठीक पट नहीं रहा था। पर उन्हें आशा थी जैसे कोलम्बस को अपनी यात्रा में आशा रही होगी कि कहीं-न-कहीं नया देश मिलेगा ही। आजकल वे जब देखो तब व्यस्त रहते थे यद्यपि यह पता नहीं लगता था कि क्यों व्यस्त हैं।

जो लोग उनके यहां आते, वे उनके घर-द्वार तथा उनके पहनावा आदि से विशेष प्रभावित नहीं होते थे। वे सब जानते थे या जान जाते थे कि मुनीमजी बूढ़े हो गये, पर अभी उनकी तनख्वाह केवल अस्सी रुपये थी। अवश्य मुनीमजी अपने मुंह से इसे सौ बताया करते थे। पर कस्बे की बात कस्बे में छिपती नहीं थी। लड़कीवाले इस झूठ को कोई अस्वाभाविक नहीं समझते थे क्योंकि वे स्वयं ही कौनसे दूध के धुले हुए थे, और जो बात जैसी है उसे वैसी न बताकर वे दुगुनी-तिगुनी करके बताते थे। आमतौर से यह समझा ही जाता था कि सौ झूठ बिना बोले शादी नहीं होती। इस सौ को सवा सौ और सुविधानुसार दो सौ कर देना कोई बड़ी बात नहीं थी।

यद्यपि मुनीमजी यह समझ रहे थे कि वे ही जो कुछ कर रहे हैं, पर सत्यवती भी अपनी तरफ से दूर-दूर तक खबर लगा रही थी। न मुनीमजी इस सम्बन्ध में अपनी कोई बात सत्यवती को बताते थे, और न सत्यवती ही उन्हें कुछ बताती थी। बात यह है कि सैकड़ों बातें होती थीं, और उनका कोई नतीजा नहीं निकलता था। इन छोटी-छोटी बातों को कहां तक कहा जाता और कहां तक सुना जाता। इसलिए दोनों ने अपने मन में यही तय कर रखा था कि जब कोई बात ढंग की मालूम हो, तभी उस पर मगजपच्ची की जाय, और सलाह ली जाय।

मुनीमजी यह समझते थे कि उनकी मुनीमी की नौकरी लक्ष्य-प्राप्ति में साधक न होकर बाधक ही थी। पर वे इतने बुद्धू नहीं थे कि केवल इस कारण नौकरी को छोड़कर अलग हो जाते। यों तो उनकी उम्र इतनी हो चुकी थी कि यदि वे सरकारी नौकरी में होते तो अब तक रिटायर हो जाते, पर उसमें पेन्शन मिलती है, पर यहां तो ऐसी कोई बात नहीं थी। मालिकान भी यह पसन्द करते थे कि पुराना आदमी है, रहे तो अच्छा रहेगा, और

वे भी यह समझते थे कि अधिकतर काम तो छोटा मुनीम ही करता है, इधर जबसे लड़के को नौकरी मिली है, तब से मालिकान भी इज्जत करते हैं, फिर क्या बेजा है कि आसानी से खर्च लायक रुपये मिल जाते हैं।

इसी कारण मुनीमजी ने नौकरी नहीं छोड़ी। पर वह यह कोशिश करने लगे कि उनके रंग-ढंग से यह पता लग जाय कि वे मुनीमी की परवाह नहीं करते, और उस पर निर्भर नहीं हैं। इसी उद्देश्य से उन्होंने एक नई अचकन सिलवा ली, और सत्यवती तथा लड़कियों के लिए भी नई साड़ियां लीं। कमरों के सामने तथा जंगलों पर कभी परदे नहीं लगे थे, अब उन पर भी फूलदार परदे लग गये। यह इस कस्बे के लिए बिल्कुल नई बात थी। यद्यपि ये परदे बहुत मामूली थे, पर कस्बेवालों को चौंका देने के लिए यथेष्ट थे। इन सब बातों को करने में मुनीमजी का जो उद्देश्य था, वह सफल हो गया। यद्यपि कस्बे में उनके दुश्मनों की संख्या बढ़ी, फिर भी कुछ लोग बिना कारण उनके मित्र भी हो गये। पण्डित रामदहिन ऐसे व्यक्ति जो यह आशा करते थे कि दूर भविष्य में जाकर सन्तोषकुमार से उनका कुछ भला होगा, मुनीमजी के साथ घनिष्ठता बढ़ाने लगे। कस्बे की हालत कुछ अच्छी नहीं थी। और सब लोग यही चाहते थे कि बनारस ऐसे शहरों में जाकर अपने भाग्य में परिवर्तन लावें।

मुनीमजी ने अपने मकान की जो मरम्मत कराई थी तथा मरम्मत कराते समय उसमें जो कई नई बातें करवाई थीं, उन्हीं से लोगों ने संतोषकुमार की आमदनी का एक अन्दाजा लगा लिया था। अब जो मुनीमजी को नई अचकन तथा उनके घर की स्त्रियों को नई डिजाइन की साड़ियां पहने देखा तो लोगों पर और अधिक प्रभाव पड़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि लड़कीवाले और भी अधिक दौड़ने लगे। इस बात से मुनीमजी को

खुशी तो हुई, पर वे जो कुछ चाहते थे, वह अब भी उतना ही दूर रह गया। जैसी उनकी हैसियत थी, वैसी हैसियत के लोग या उनसे जरा बीस हैसियत रखनेवाले लोग ही उनके पास मुख्यत: दौड़ रहे थे। पहले-पहल तो वे यह समझते थे कि चतुरता से बात की जाय तो इन्हीं लोगों से अधिक दहेज ऐंठा जा सकता है, पर धीरे-धीरे तजर्बे से वे समझ गये कि वे उनकी आशा पूर्ण नहीं कर सकते। इसलिये वे अब ऐसे आगन्तुकों से खुश न होकर उनसे नाराज ही रहने लगे, क्योंकि जो लोग आते थे वे कुछ देते तो नहीं थे, उलटा रुपया-दो रुपये खा-पी जाते थे। यह बात मुनीमजी को बहुत अखरती थी। इसलिये इधर इन्होंने यह रुख लिया था कि कोई लड़कीवाला उनसे मिलने आता था, तो बाहर ही से यह कहकर उसे विदा कर देते थे कि पुत्र की सगाई तय हो चुकी है। कहना न होगा कि इसके बाद वह पार्टी फिर लौटती नहीं थी। कस्बेवालों में भी यह खबर धीरे-धीरे फ़ैली, पर मुनीमजी ने असली बात बता दी कि अभी कहीं कुछ तय नहीं हुआ है, पर बहुत-सी बातचीत चल रही है। कस्बेवालों में जिन्हें वे विशेष विश्वासपात्र समझते थे, उनसे उन्होंने यह भी कहा—"अब मुझे कोई फिक्र करने की जरूरत नहीं है। साहब ने सारा भार अपने ऊपर ले लिया है।"

रामदहिन ने इस पर भक्तिभाव से कहा—"अच्छा? मालूम होता है साहब बहुत ख्याल रखते हैं।"

"हां नहीं तो क्या? साहब लोग ऐसे ही होते हैं, जिसका ख्याल करते हैं उसका सब तरह से ख्याल करते हैं।"

रामदहिन कोई दिल से मुनीमजी का भक्त नहीं था। वह तो अपने लड़के के भविष्य को देखते हुए मुनीमजी से दोस्ती बढ़ा रहा था, पर भीतर-ही-भीतर उनकी बढ़ती पर जलता था। बोला—"पर एक बात ख्याल रखना, कहीं साहब उसे किसी ईसाइन

के पल्ले न बांध दे। अंग्रेज लोग ऐसा बहुत करते हैं। मेरा तो ख्याल यही है कि शादी-ब्याह अपने ही देशवालों के जरिये होना चाहिये।"

मुनीमजी ने प्रतिवाद करते हुए कहा—"अरे वह वैसा साहब थोड़े ही है। धोखे से ईसाई बनाना यह तो टुच्चों का काम है। उनके मिलने-जुलनेवाले कितने बड़े-बड़े लोग हैं, उन्हीं में से किसी की लड़की के साथ शादी करा देंगे।" कहकर मुनीमजी को एकाएक याद आया कि ये सारी बातें तो झूठी हैं, शादी जब होगी तो इधर ही से होगी, और पोल खुल जायगी कि साहब ने कुछ नहीं किया। इसलिये संभलते हुए उन्होंने कहा—"मुझसे सन्तोषी का बस यही तो झगड़ा चल रहा है। मैं कहता हूं यों तो साहब हमारे लिये देवता हैं, और रहेंगे, पर शादी-ब्याह के मामले में उन्हें पड़ने देना अच्छा नहीं है। यही राय सन्तोषी की मां की भी है।"

रामदहिन ने कहा—"यही तो उचित है, पर साहब क्या कहता है यह भी सुन लेना चाहिये। शायद साहब के मन में कोई अच्छा घर हो।"

मुनीमजी मुस्कराते हुए बोले—"बस यही सब तो देख रहा हूं। मैंने पूरा इन्कार नहीं किया, और न इकरार ही किया है। सारी बातों को देखकर तब तय करूंगा कि कहां शादी करनी है।"

रामदहिन ने कहा—"हां एक ही तो लड़का है, अपनी सब हसरत निकाल लो, फिर कहने को न रह जाय कि यह गलती हुई और वह गलती हुई।"

रामदहिन की बातों में जो चोट थी, मुनीमजी उसे कुछ-कुछ ताड़ गये। बोले—"अपने को क्या सोचना है, सब वही भगवान

सोचते हैं। मनुष्य के सोचे कुछ होता थोड़े ही है। यह देखो न मैं कब समझता था कि इतना बड़ा साहब सन्तोषी का मित्र बन जायगा" कहकर वे कुछ हंसे।

रामदहिन पर तो इस प्रकार रोब पड़ गया, पर इन दिनों मुनीमजी खुद ही भीतर-भीतर कुछ चिन्तित हो रहे थे। उन्होंने इन दिनों अपने सामने जो ऊंचा लक्ष्य रक्खा था, वह पूरा होता दिखाई नहीं दे रहा था। शादी के जो प्रस्ताव आ रहे थे वे कुछ बहुत अच्छे नहीं थे। साहब के सम्बन्ध में तमाम अजीबो गरीब किस्से सुनाने पर भी कोई दहेज की रकम बढ़ाने पर तैयार नहीं होता था। उन्होंने सत्यवती से पूछा कि उधर क्या हाल है, तो पता लगा कि उधर भी कोई विशेष सफलता मालूम नहीं दे रही थी। सत्यवती दहेज की बहुत मोटी रकम नहीं मांग रही थी, पर वह चाहती थी कि बहुत ऊंचे खानदान में शादी हो। पर यह होता नहीं दिखाई दे रहा था। ज्यों-ज्यों वह इस क्षेत्र में निराश हो रही थी त्यों-त्यों मुनीमजी पर वह नाराज़ होती जा रही थी। यों यदि वह कोई अच्छा सम्बन्ध पा जाती तो वह डींग मारती, पर जब वह सफल नहीं हो पाई, तो वह मुनीमजी को कोसने लगी। मुनीमजी दौड़ धूप में कोई कसर नहीं रखते थे, पर मियां की दौड़ मसजिद तक। उनके परिचय का जितना दायरा था, उसी में वे दौड़ते थे। इस प्रकार मुनीमजी के परिवार में सन्तोषकुमार की अच्छी नौकरी से जो खुशी की लहर दौड़ गई थी, वह बहुत कुछ शान्त हो चुकी थी। बल्कि अब बहाव दूसरी तरफ जा रहा था। जब कोई बात पड़ती तो सत्यवती मुनीमजी को फजूलखर्ची के लिये दोष देती थी। कहती थी—"मकान में इस तरह फैशन की क्या जरूरत थी? अचकन क्यों सिलवाई गई? जिसके घर में दो-दो कुवांरी लड़कियां पड़ी हुई हैं, वह रुपयों को इस तरह से उड़ाता कैसे है?"

सत्यवती ने एकाध बार आवेश में साहब को भी गालियां दी थीं, यद्यपि वह स्वयं जानती थी कि कोई साहब कहीं नहीं है। फिर भी ऐसा करने से मुनीमजी का दिल दुखेगा, इस कारण वह जब-तब साहब पर बरस पड़ती थी।

चौदह

सेठ अमोलकचन्द ने समझ लिया कि सन्तोषकुमार मन में नाखुश होते हुए भी अब आत्मसमर्पण कर चुका है। इसलिये उन्होंने एक तरफ तो सन्तोषकुमार से पहले से अधिक मीठा बोलना जारी रक्खा, क्योंकि वे सत्य और अहिंसा में विश्वास करते थे और हृदयपरिवर्तन के दर्शन के अनुयायी थे। दूसरी तरफ वे सन्तोषकुमार को बार-बार अपने चोरबाजारवाले कामों में जल्दी-जल्दी भेजने लगे। इन दिनों सेठजी का 'व्यापार' बहुत चमक रहा था। हजारों का वारा-न्यारा हो रहा था। सन्तोषकुमार बिना प्रतिवाद के सब कामों में जाता था। वह जानता था कि बहाना करके इस व्यक्ति के चंगुल से छुटकारा पाना असंभव था। इस कारण वह घटनाओं की प्रतीक्षा कर रहा था और इस बीच में जो काम उसे दिये जा रहे थे, उन्हें वह पहले की तरह यथासाध्य ईमानदारी से करता जा रहा था। इस प्रकार सम्पूर्णरूप से आत्मसमर्पण कर देने पर भी वह बराबर कथित दस्तूरी लेने से इन्कार कर रहा था। सेठजी को अब इसका हाल मालूम

हो चुका था, पर वे इस अर्थ में तो खुश ही थे कि उनके पैसे बच रहे थे, पर अभी वे सन्तोषकुमार की आत्मा को पूर्णरूप से खरीद नहीं सके थे, इसका उन्हें मलाल था। वे भी घटनाओं की प्रतीक्षा कर रहे थे।

सन्तोषकुमार नियमित रूप से अर्जियां देता जा रहा था। जिस जमाने में वह केवल ट्यूशन करता था, उस जमाने में भी वह इस व्यग्रता के साथ अर्जियों के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं करता था जितना वह इन दिनों कर रहा था। उसे केवल आत्मिक अशान्ति थी, ऐसी बात नहीं, अब वह यह भी समझने लगा था कि सेठजी की नौकरी कहीं उसे किसी दिन जेलखाने न भिजवा दे।

पर किसी भी अर्जी का उत्तर नहीं आया था। वह मन-ही-मन बहुत चिन्तित था। सबसे बड़ी बात यह थी कि जिस मित्र या परिचित से उसने खुले या अधखुले रूप से अपने मानसिक संकट की बात बताई, उसी ने उसका मज़ाक उड़ाया, और उसे धर्मराज तथा युधिष्ठिर आदि की उपाधि दे डाली। एक मित्र ने इस सम्बन्ध में उससे जो कुछ कहा उससे वह और भी सन्देह में पड़ गया। उस मित्र ने कहा—"तुम तो चोरबाजार से घबड़ा रहे हो पर मैं तो कहता हूं कि चोरबाजार भी एक आवश्यकता है।"

सन्तोषकुमार ने प्रतिवाद करते हुए कहा—"यह कभी नहीं हो सकता। जो चीज बुरी है वह अच्छी नहीं हो सकती।"

उस मित्र ने तैश में कहा—"सरकार ने तो खुद ही चोरबाजार की सृष्टि कर रखी है। हममें यह कहा जाता है कि राशन की चीजों पर गुजारा करें, पर राशन में इतनी कम चीज दी जाती है कि उससे किसी भी अच्छे आदमी का पेट नहीं भर सकता। ऐसी हालत में लोग चोरबाजार में न जायं तो कहां

जायं" कहकर उस व्यक्ति ने हिसाब लगाकर अपनी बातों की सत्यता प्रमाणित कर दी।"

मित्रों के इस प्रकार के कथनों से सन्तोषकुमार के मन में विवेक का द्वन्द्व कुछ धीमा जरूर पड़ जाता था, पर घूम-फिरकर वह फिर उसी बिन्दु पर आ जाता था। वह जिन बातों को आंख के सामने नित्यप्रति होते देखता था, वह जान-बूझकर उनकी तरफ से आंख कैसे बन्द कर लेता। यदि उसने इस सम्बन्ध में अपने परिवार अर्थात् माता-पिता को कितना कष्ट होगा यह न जान लिया होता, तो इसमें सन्देह नहीं कि वह कब का यह नौकरी छोड़ चुका होता। इन दिनों पिता के भी पत्र अधिक आ रहे थे। उन पत्रों में बस यही लिखा होता था कि वह निष्काम रूप से कर्म करता जाय, क्योंकि कर्म में ही उसका अधिकार है, फल में नहीं। वे ही बातें जो अन्तिम बार सुनने को मिली थीं। सन्तोषकुमार इन बातों से इतना परिचित हो गया था तथा खिन्न हो गया था कि वह अब पिता के पत्रों को अच्छी तरह पढ़ता भी नहीं था। उन्हें पढ़े या न पढ़े, उसके मन पर यह तो छाप बैठ ही जाती थी कि यदि उसने नौकरी छोड़ दी, तो उसके माता-पिता का बुरा हाल होगा। इन दिनों उसे और एक भय होने लगा था, वह यह कि पिताजी उसकी नौकरी में जितना जोश दिखला रहे थे, उससे यह अनुमान करना कठिन नहीं था कि नौकरी छोड़ देने पर उनकी कितनी भारी आशा भंग होगी। शायद उनकी मृत्यु भी हो जाय।

इन बातों के कारण वह अजीब उधेड़बुन में पड़ा हुआ था। उसका स्वास्थ्य भी कुछ गिर रहा था। यहां तक कि सेठ अमोलकचन्द ने भी एक दिन संध्या समय उससे कहा—"क्या बात है सन्तोषकुमार, तुम्हारी तबियत कुछ खराब है क्या ?"

न मालूम क्यों सन्तोषकुमार को सेठजी के इस प्रश्न से खुशी नहीं हुई। जब वह पहले-पहल सेठजी की नौकरी में आया था, तब वह उन्हें यदि देवता नहीं तो देवतुल्य अवश्य समझता था, पर अब प्रतिक्रिया में उसकी मानसिक अवस्था ऐसी हो गई थी कि यदि सेठजी कोई साधारण बात भी कहते तो वह यही समझता कि इसमें कुछ पेंच अवश्य है। इसीलिये वह शंकित हो गया, बोला—"नहीं-नहीं, मैं बिलकुल अच्छी तरह हूं। मुझे कोई कष्ट नहीं है।"

सेठजी ने सन्तोषकुमार को ध्यान से देखा, फिर बोले—"तुम्हारी शादी होनेवाली थी, उसका क्या हुआ?"

इस प्रश्न से सन्तोषकुमार और भी अप्रसन्न हुआ, बोला—"नहीं तो ऐसी कोई बात नहीं है, यों तो पिताजी जब से मैंने एन्ट्रेंस पास किया, तभी से मेरी शादी की तैयारी कर रहे हैं।" कहकर उसने ऐसे मुंह बनाया जैसे यह कोई बात ही नहीं है।

सेठजी ने कुछ सहानुभूति के स्वर में कहा—"जो पिता होता है, उसको फिक्र करनी ही पड़ती है। अभी तुम इन बातों को क्या समझोगे? हां तुम्हारी दो कुंवारी बहनें भी तो है?"

सन्तोषकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ कि सेठजी को इतनी सारी बातें याद कैसे रह गईं। इस बार उसे आश्चर्य के साथ कुछ भय भी हुआ। एक अस्पष्ट परिभाषाहीन भय जिसमें यह मालूम नहीं हो पा रहा था कि किस बात में भय है और क्यों है। उसने संक्षिप्त रूप से कहा—"हां"

सेठजी ताड़ गये कि सन्तोषकुमार को आश्चर्य हो रहा है कि उन्हें उसके घर के सम्बन्ध में इतनी बातें कैसे मालूम हो गईं, और उन्हें इस बात पर बड़ी खुशी हुई, बोले—"तुम ताज्जुब कर रहे होगे कि मुझे ये सारी बातें याद कैसे रह गईं, तुम्हें

यह सोचना चाहिये कि मेरा काम ही ऐसा है कि अपने सब आदमियों की देखभाल रक्खूं।" कहकर फिर एकाएक उन्होंने अपना लहजा बदल दिया, और बोले—"तुमने इतने दिनों तक मुझसे इनकी याद क्यों न दिलाई, मैं कुछ-न-कुछ मदद तो कर ही सकता था।"

सन्तोषकुमार ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। तब सेठजी ने कहा—"जैसी तुम्हारी मर्जी, पर मैं तो अपनी तरफ से भलाई करने से चूक नहीं सकता। कई बार इच्छा हुई कि मैं जाकर तुम्हारे पिताजी से मिल आऊं, पर फुर्सत ही नहीं मिलती। खैर मिलूं या न मिलूं जो भी मुझसे बन पड़ेगा मैं करूंगा।"

इसके बाद सेठजी अपने नये धन्धे के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे। उन्होंने इन दिनों बनस्पति का एक कारखाना खोला था। काम चालू हो गया था, पर इसी बीच में जनता के एक हिस्से में बनस्पति के विरुद्ध बहुत प्रचार-कार्य होने लगा था। सेठजी इस बात से कुछ परेशान थे। यद्यपि उनके घर में बनस्पति का इस्तेमाल नहीं होता था, और सैकड़ों यत्न करके असली घी प्राप्त करने की चेष्टा की जाती थी, पर यह बात और थी, और वह बात और। लाखों रुपये इस काम में फंस चुके थे, और वे चाहते थे कि बनस्पति का प्रयोग बढ़े। सेठजी अकेले ही इस सम्बन्ध में चिन्तित हों ऐसी बात नहीं, सभी बनस्पति के धन्धे वाले इस सम्बन्ध में चिन्तित थे, और वे संगठित होकर युद्ध-क्षेत्र में उतर पड़े थे। सेठजी को इसी प्रचार-कार्य के सम्बन्ध में कई काम सौंपे गये थे। वह उन्हीं के सम्बन्ध में सन्तोषकुमार से बातें कर रहे थे। बोले—"इस विज्ञान के युग में जो लोग असली घी की बात करते हैं, वे निरे पोंगे हैं। मैं तो रोज इसी को खाता हूं, और मैं इसमें कोई बुराई नहीं देखता। माना कि असली घी में कुछ श्रेष्ठता है, तो भी यह तो साफ है कि करोड़ों

आदमियों के लिए घी नहीं मिल सकता, और यह युग है जनता का, आम आदमी का" कहकर उन्होंने सन्तोषकुमार के चेहरे की तरफ देखा कि क्या असर उत्पन्न हुआ।

सन्तोषकुमार ने कुछ भी नहीं कहा। सिर्फ सिर हिला दिया, जिसका अर्थ समझना कठिन था।

सेठजी ने धीरे-धीरे उसे अपनी सारी योजना बताई। सन्तोषकुमार समझ गया कि उसे इस सम्बन्ध में कोई काम दिया जाने वाला है। अगले ही क्षण सेठजी ने जो कुछ भी कहा उससे उसकी शंका सच्ची साबित हुई। सेठजी बोले—"तुम एक हफ्ते के लिए अपने कस्बे में चले जाओ, और वहां के सब लोगों के हस्ताक्षर से राज्य की सरकार के पास एक अर्जी भिजवाओ जिसमें लिखा हो कि वे लोग उस आन्दोलन के साथ नहीं हैं, जो वनस्पति के विरुद्ध हो रहा है, समझे ?"

सन्तोषकुमार ने जो यह प्रस्ताव सुना, उसके मन में सहसा यह बात आई कि वह इस काम को करने से इन्कार कर दे। इस आशय के शब्द उसकी जीभ पर आ भी चुके थे, पर उसे एकाएक स्मरण हो आया कि इस समय वह जो कार्य कर रहा है, उससे तो यह फिर भी अच्छा ही है। इसलिए उसने इन्कार नहीं किया, पर साथ ही उसने इसमें किसी प्रकार का जोश भी नहीं दिखलाया। गतवार जाकर उसने अपने माता-पिता की जो मानसिक अवस्था देखी थी, उसके कारण उसमें घर जाने का जोश भी बाकी नहीं था।

सेठजी इन बातों को ताड़ कैसे सकते थे, बोले—"अच्छी बात है तुम घर जाओ, तुम कुछ न करना, बस मेरी तरफ से जाकर मुनीमजी से सारे काम बता देना। वे करवा देंगे, इतना विश्वास मुझे है।" कहकर उन्होंने एक पुलिन्दा निकाला जिसमें तीन-चार सौ के करीब टाइप किये हुए तार थे। उनमें से एक को

सन्तोषकुमार के हाथ में देते हुए उन्होंने कहा—"तुम घर जाकर सार्वजनिक अर्जीवाला काम तो मुनीमजी के सुपुर्द कर दो, और एक हफ्ता तक दिन-रात मिर्जापुर, गाजीपुर, बलिया आदि स्थानों में बसों, इक्कों, तांगों में जहां जैसा बन पड़े घूमो, और जहां भी कोई पोस्ट आफिस मिले वहां से इनमें से एक तार दे दो। समझ गये न। इसके लिए खर्चा लेते जाओ। कहीं कोई खास बात हो जाय, तो मुझे खबर करना।" कहकर उन्होंने सन्तोषकुमार के हाथों में दस रुपये के नोटों का एक छोटा-सा पुलिन्दा दिया और बोले—"इसमें सात सौ रुपये हैं। तीन-चार सौ रुपये तो तार ही में लग जायंगे बाकी तुम्हारे खर्च के लिए हैं। हां एक बात और, मुनीमजी को जो काम दिया जा रहा है उसके लिए उन्हें अलग पारिश्रमिक मिलेगा।"

सन्तोषकुमार ने यन्त्रवत् सारी चीजों को ले लिया, मुंह से केवल इतना ही बोला—"अच्छी बात है।"

वह अभी तक यह तो तय कर नहीं पाया था कि नौकरी छोड़ देगा, इस कारण वह और कुछ बोल न सका।

सेठजी भी उसे बिना कुछ कहे वहां से उठने की तैयारी करने लगे। मौके को समझ कर सन्तोषकुमार अपनी चीजों को लेकर वहां से निकल पड़ा। जो घर पहुंचा तो उसकी अजीब हालत थी। कभी वह न तो भजन-पूजन करता था, और न प्रार्थना करता था, पर उस दिन उसने घर पहुंचकर कमरा बन्द कर लिया और रुआंसा-सा होकर प्रार्थना करने लगा। उसे मालूम नहीं था कि कैसे प्रार्थना की जाती है, पर वह अपने ढंग से गिड़-गिड़ाने लगा—"हे भगवान् ! हे काशी विश्वनाथ ! यह तुम्हारी कैसी माया है कि पैसे कमाने और मुनाफा करने के सब तरीकों में केवल बेइमानी और जनता को धोखा देना है। यदि मैं नौकरी छोड़ता हूं तो मैं भी मारा जाता हूं, और घरवालों का तो

क्या हाल होगा यह प्रत्यक्ष देख रहा हूं। हे भगवान्! मैं सबकी तरह क्यों नहीं हो पाता, जो आंख मूंदकर अधर्म करते हैं, और जरा भी हिचकिचाते नहीं हैं।"

इसी प्रकार से वह देर तक प्रार्थना करता रहा। भगवान् ने उसकी शंकाओं का समाधान नहीं किया। जब रात अधिक हो गई, तो वह बिना खाये ही सो गया।

पन्द्रह

जब अगले दिन सन्तोषकुमार उठा तो उसके सारे बदन में दर्द था। भूख और परेशानी से अजीब हालत हो रही थी। एक बार उसके मन में आया कि उठकर इन टाइप किये हुए सारे तारों को चूल्हे में जला दे। पर यह सोचकर कि रसीद दिखाना है वह ऐसा करने से रुक गया। एक बात का तो उसने पक्का निश्चय कर लिया था। वह यह कि घर तो जाना नहीं है, और न मुनीमजी को वह काम देना है। वह जानता था कि मुनीम जी बड़ी खुशी से उस काम को करेंगे, इसी कारण ही उसने निश्चय किया कि घर जाना नहीं है। रहा तारों का देना, सो वह उसके लिए उसी दिन रवाना हो गया। स्टेशन पर जाकर उसने टाइमटेबुल देखा, और कुछ सोचकर उसने अगले स्टेशन का टिकट खरीदा। वहां उतर कर उसने वहीं से एक तार दिया। पता लगाया कि अगला डाकखाना कितना दूर है, तो लोगों ने बतलाया कि इस स्थान से दो कोस होगा। सवारी के नाम पर केवल इक्का था सो भी बहुत टुटही किस्म का। झुंझला कर

उन्हीं में से एक पर सवार हो गया। वह कुछ दूर ही जा पाया था कि एक सवारी और मिल गई। दोनों बातचीत करते हुए रवाना हो गये। उस व्यक्ति की उम्र भी उसी के बराबर थी। शायद वह भी इसी गाड़ी से आया था। उसके पास केवल एक झोला था।

दोनों में बातचीत होने लगी। उस व्यक्ति ने अपना नाम रामजियावन बतलाया और बोला कि बनारस में उसका भाई दूकान करता है। इधर उसका घर है, वहीं जा रहा है। उसने सन्तोषकुमार से पूछा—"आपका घर भी इधर ही है?"

तब सन्तोषकुमार ने सारा हाल बतलाया। उसने यह बता दिया कि वह तार देने के लिए भ्रमण कर रहा है। कैसा तार, किसका तार, किसे दिया जा रहा है, यह सारी बात उसने बता दी। केवल एक बात उसने नहीं बताई कि वह इन तारों से असहमत है। इसके विपरीत जब रामजियावन ने कहा कि इस प्रकार के तार देना ठीक नहीं है क्योंकि यह एक तरह की बेइमानी है, तो सन्तोषकुमार ने इन तारों का समर्थन किया। बोला—"इसमें तो कोई शक नहीं कि सारी जनता को घी नहीं मिल सकता, सारी जनता के लिए तो यही बनस्पति हो सकता है। घी अच्छा तो है पर उन लोगों के लिए यह किस काम का जिन्हें यह कभी मिल नहीं सकता, बनस्पति ऐसी चीज है जिसे सब लोग पा सकते हैं।"

रामजियावन ने कहा—"क्यों न ऐसा किया जाय कि जितना भी घी है वह सबको दिया जाय, और कोशिश की जाय कि घी की पैदावार बढ़े।"

इसी प्रकार दोनों में तर्क-वितर्क होता रहा। सन्तोषकुमार ने बड़े जोरों के साथ बनस्पति का समर्थन किया। उसने उन्हीं सारे

तर्कों को दिया जिन्हें कल सेठजी उसे दे रहे थे। अब भी वह मन-ही-मन निश्चित था कि बनस्पति का पक्ष गलत है, विशेषकर उसके पक्ष में इस प्रकार बेइमानी से प्रचार-कार्य करना गलत है, पर एक बाहरी आदमी के सामने वह यह कैसे स्वीकार करता कि वह विवेक के विरुद्ध किसी काम को कर रहा है। रामजियावन ने बात-बात में उसके विषय में और सब बातें भी पूछ लीं। इसके बाद रामजियावन ने यह प्रस्ताव रक्खा कि वह यहां अपरिचित तो है, उसके घर पर ठहर जाय, और फिर वहां से काम शुरू करे। रामजियावन ने यह भी कहा कि तर्क करने की बात और है, वह हर तरह से उसके कार्य में मदद देगा।

सन्तोषकुमार ने बहुत खुशी के साथ इस प्रस्ताव को ग्रहण कर लिया, और वह उसके घर पर ठहर गया। यद्यपि रामजियावन ने बताया था कि यह उसका घर है, पर असल में यह उसका घर नहीं, बल्कि स्थानीय कम्युनिस्ट पार्टी का दफ्तर था। जिस कमरे में सन्तोषकुमार ठहराया गया, उसमें 'कम्युनिस्ट पार्टी जिन्दाबाद,' 'दुनिया के मजदूर एक हो' आदि नारे लिखे हुए थे, पर सन्तोषकुमार दलों की राजनीति से सम्पूर्ण अपरिचित होने के कारण यह न समझ सका कि यह किसी दल का दफ्तर है। जो कुछ भी हो सन्तोषकुमार को इन बातों से मतलब नहीं था। पर रामजियावन ने उसे जो यहां ठहराया था, वह किसी मतलब से ही ठहराया था। यद्यपि बनस्पति के सम्बन्ध में कम्युनिस्ट पार्टी की कोई निश्चित राय नहीं थी, न मार्क्स ने ही इस पर कुछ कहा था, न लेनिन ने, न इस सम्बन्ध में कोई थिसिस ही लिखी गई थी, फिर भी रामजियावन ने एक पुराने कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता के नाते यह निष्कर्ष निकाल लिया कि जो बात पूंजीपतियों के पक्ष में है, और जिसे करने के लिए पूंजी-

पति इतनी चालाकी बरत रहे हैं, वह अवश्य ही जनता के विरुद्ध होगी। फिर उसे इस प्रकार बेईमानीपूर्ण तारों को भेजकर सरकार पर प्रभाव डालने की बात में कुछ बुराई की गंध आ रही थी। उसने इक्के में ही बैठे-बैठे झटपट अपना कर्तव्य तय कर लिया था, और इस कस्बे में उतर कर उसने उसे कार्यरूप में परिणत करना शुरू कर दिया। दो दिनों तक तो सन्तोषकुमार को कुछ करने नहीं दिया गया, और उसे बहला कर रक्खा गया। इसके बाद उससे कहा गया कि वह क्यों कष्ट करेगा, रामजियावन अपने आदमी लगाकर सारे तारों को भेजवा देगा। नेकी और पूछ-पूछ।

सन्तोषकुमार फौरन इस बात पर राजी हो गया। रामजियावन ने यह कहा कि केवल इस जिले में ही नहीं, वह अपने भाई की दूकान के सिलसिले में कई जिलों का दौरा कर रहा है। सन्तोषकुमार साथ-साथ चले तो वह हर जगह अपने आदमियों से सारा काम करवा देगा। यद्यपि सन्तोषकुमार को इधर का सारा जीवन अपने घर के बाहर ही बीता था, पर वह एक ही स्थान में रहता था, इसलिए उसे बाहर के जीवन का भय लगता था। नित्यप्रति स्थान बदलना, और कहां डाकखाना है इसकी सूची लेकर फिरते रहना, यह उसे बहुत कष्टकर मालूम हो रहा था। इस कारण उसने रामजियावन को बहुत धन्यवाद दिया, और मन में यह समझा कि ईश्वर की ही मर्जी है कि राह चलते एक ऐसे सज्जन से भेंट हो गई।

जैसा रामजियावन उसे बताने लगा, वह वैसा ही करने लगा। उसने तारों के पुलिन्दे को, साथ-ही-साथ तार भेजने के रुपयों को उसके सुपुर्द कर दिया। तार यथासमय भेजे जाने लगे और उनकी एक-एक की रसीद सन्तोषकुमार के पास एकत्र

होने लगी। इसी प्रकार से सारे जिले का दौरा समाप्त कर वे और जिलों में गये और वहां भी इसी प्रकार से सारा काम सुचारुरूप से हुआ। जब सारा काम समाप्त हो गया तो रामजियावन ने उससे बिदाई ली। उसने बिदाई लेते समय यह भी कहा कि भविष्य में जब कभी उसे इस प्रकार के काम के लिए सहायता की आवश्यकता हो, तो वह उसे एक कार्ड डाल दे। कहकर उसने उसे एक पता दिया।

जितने समय में यह सारा काम समाप्त होता उससे पहले ही यह काम समाप्त हो गया, इसके अलावा यह जगह उसके घर से केवल पच्चीस मील पर थी, इस कारण उसने यह तय किया कि चलते हुए घर भी होता जाय। तदनुसार वह एकाएक घर पहुंचा, तो वहां घर में घुसते ही जो पहली बात उसने देखी, उससे उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसका सारा घर बनस्पति के प्रचारकार्य के प्लेकार्डों से भरा हुआ था, जिन पर इस प्रकार के वाक्य लिखे हुए थे—'बनस्पति जनता की चीज है,' 'खालिस घी कहीं नहीं मिलता, फिर क्यों न बनस्पति खाय' इत्यादि इत्यादि।

उसने अपने पिता से पूछा कि यह सब क्या है, इसके उत्तर में मुनीम जी ने बड़े उत्साह के साथ कहा—"तुम्हारे साहब की तरफ से एक आदमी आया था, जिसने ये सारे सामान दिये, और रोज शाम को इस विषय में सभा होती है और एक कागज पर लोगों के दस्तखत कराये जाते हैं।

सन्तोषकुमार ने इस पर और अधिक नहीं पूछा। उसने कहा—"आप बिना समझे-बूझे इस काम में क्यों पड़ गये? बनस्पति तो जहर है जहर। तीन पुश्तों तक चूहे इस पर पाले गए, तो अन्धे हो गये।"

तब मुनीमजी ने वे सारे तर्क दिए जिन्हें 'साहब' के आदमी

ने बतलाया था। पिता-पुत्र में इस पर काफी बहस हो गई। सन्तोषकुमार को इस बात पर काफी क्रोध आया कि सेठजी ने उसके सारे घर को लालच देकर अपने काम में समेट लिया। पर सेठजी वहां कहां थे, इस कारण उसकी सारी भड़ास घरवालों पर निकली। वह मुश्किल से घर २४ घंटे रहा, पर इस बीच में वह मां तथा बहनों से सबसे एक-एक बार लड़ा। अन्त को वह खिन्न होकर बनारस रवाना हो गया।

सोलह

सेठजी सन्तोषकुमार से बहुत खुश हुए कि वह इतनी जल्दी सारा काम सुचारुरूप से करके लौट आया। तार की रसीदों की गड्डी को लेकर खेलते हुए, उन्होंने कहा—"मैंने सोचा शायद तुम घर न जा पाओ, इसलिए आदमी भेजकर उधर का सारा काम ठीक कर लिया। मुनीमजी बहुत अच्छा काम कर रहे हैं।"

इन बातों को सुनकर सन्तोषकुमार बिलकुल खुश नहीं हुआ बल्कि वह बहुत अधिक अप्रसन्न हुआ। बोला—"आपने यह बहुत बुरा किया। मैं आपका नौकर हूं पर मेरे घरवाले तो आपके नौकर नहीं हैं।"

सेठजी समझ गए कि इस समय सन्तोषकुमार पर समय-समय पर आनेवाला दौरा सवार है। उन्होंने उससे अधिक बात करना उचित न समझा, और नरम होकर बोले—"मैं कब कहता हूं कि वे मेरे नौकर हैं। मैं तो तुमको भी अपना भाई समझता हूं। मैं तो सर्वोदय में विश्वास करता हूं कि जो जहां है वह वहीं सुखी रहे। मुनीमजी तो हमारी तरफ से जिले-भर में दस्तखत

बटोरने के लिए दौरा करना चाहते हैं, मैंने ही उन्हें मना किया।" कहकर सेठजी व्यस्तता के साथ उठकर चले गए।

सन्तोषकुमार कुछ देर तक वहीं बैठकर फिर अपने काम में चला गया। वह तो केवल रिपोर्ट देने आया था। वह इस समय पहले से अधिक असुखी था। जिस बात से उसे सबसे अधिक कष्ट पहुंचा था, वह यह था कि मुनीमजी अब इस सेठ के चंगुल में फंस गए थे और अब उसके लिए यह जाल और भी मजबूत हो गया था। उसे अपने पिता पर क्रोध आया, पर वह कर ही क्या सकता था। जब वह स्वयं इस नौकरी में था, तब वह यह कैसे कह सकता था कि यह नौकरी पाप है। फिर मुनीमजी का अपना दर्शनशास्त्र था, जिसमें पाप-पुण्य की समयानुसार सुविधा-जनक परिभाषा कर ली जाती थी।

वह उस दिन से और दत्तचित्त होकर अपना पुरान कार्य-क्रम पूरा करने लगा। मौका मिलते ही पुस्तकालय में जाता और वहां से दो-चार पते नोट करके लाता, फिर रात को बैठकर बड़ी देर तक अर्जियां लिखता। अर्जियां लिखते-लिखते अक्सर देर हो जाती, और फिर वह दो-एक बिस्कुट खा पानी पीकर सो जाता, खाना पकाने की न तो इच्छा ही रहती और न समय ही रहता।

This novel is one of the best novels of the world.

by a famous author.

Every one must read it.

Remarked by

Bharat Bhushan Dhar; 2nd T.D.C (H

A Lesson for modern girls

सत्रह

मुनीमजी इन दिनों बहुत खुश थे। उनके उद्योग तथा प्रभाव से एक हजार के करीब दस्तखत से एक अर्जी तैयार हो चुकी थी जिसमें सरकार से यह अनुरोध किया गया था कि बनस्पति घी के विरुद्ध जो आन्दोलन हो रहा है, तथा उसमें रंग डालकर उसका आकर्षण घटाने का जो षड्यंत्र हो रहा है, सरकार उस पर बिलकुल ध्यान न दे। साहब उर्फ सेठजी के उस आदमी के अनुरोध पर अर्जी के नीचे जो हस्ताक्षर हुए थे तथा अंगूठे के छाप लगे थे, उनमें बीच-बीच में फासला छोड़ दिया गया था। जब अर्जी तैयार हो गई, और किसी के हस्ताक्षर आदि की संभावना नहीं रही, तब उस व्यक्ति ने मुनीमजी के घर पर बैठ-कर उन खाली जगहों में और भी हस्ताक्षर तथा अंगूठे की छाप भर दिए। उसने कलम बदल-बदल कर दाहिने हाथ से बाँये हाथ से खुद ही कई दस्तखत किए। फिर मुनीमजी से भी इसी प्रकार करवाया। जब यह सब हो चुका, तब भी कुछ जगह खाली रहं गईं। तब उस आदमी ने मुनीमजी से कहा—"आप कमला और

बिमला को बुलाइए, अब वे हस्ताक्षर करें। न होगा तो उनके परिश्रम के लिए कुछ मिठाई भेंट की जायगी।" कहकर उसने आज्ञामूलक ढंग से मुनीमजी को देखा।

मुनीमजी तो मानो इस बात के लिए तैयार ही थे, बोले—"मिठाई की कोई बात नहीं, यह तो छोटी बात है।"

उस व्यक्ति ने कहा—"हां यह काम ऐसा जोखिम का है कि घर के बाहर के किसी व्यक्ति पर एतबार नहीं किया जा सकता।"

इस प्रकार से यह अर्जी तैयार हुई, और भेज दी गई। इसी समय दूसरे स्थानों से भी इसी प्रकार की अर्जियां भेजी जा रही थीं। सब अर्जियों में जनता के नाम पर ही जन वादी तरीके से सब बातें लिखी गई थीं क्योंकि सरकार को प्रभावित करने के लिए यही तरीका सबसे अच्छा समझा गया। वनस्पति के कारखानों के मालिकों ने इसी तरीके को सबसे अच्छा समझा था, और अपनी स्थानीय इकाइयों को यही हिदायत दी थी कि वे इस प्रकार से काम करें।

जब अर्जी आदि का सारा काम खतम हो गया तब वह आदमी एक दिन एक ट्रक लाकर सारे प्लेकार्ड आदि ले गया, क्योंकि अब दूसरी जगह पर उनकी आवश्यकता थी। जाते समय वह मुनीमजी को पान खाने के लिए एक सौ रुपये का नोट देता गया। साथ में वह बनस्पति का एक छोटा-सा टिन भी देता गया। उसने यह कहा—"अब तो हमारी आपकी दोस्ती हो गई, जब भी काम पड़ेगा, तभी आपके यहां आऊंगा।"

मुनीमजी को इस बात पर खुशी थी कि उनके घर के सामने एक नया ट्रक खड़ा है। गांव के कुछ छोटे-छोटे लड़के उसके इर्द-गिर्द खड़े थे, और जब कभी आंख बचाकर उसे छू भी लेते थे। वे गद्गद् होकर बोले—"अजी यह तो आपका घर है, जब चाहे तब आइये। बन्दा आपकी खिदमत के लिए हाजिर है"

इतना कहकर उन्होंने चिल्लाते हुए सबको सुनाने के लिए कहा—"साहब को मेरा सलाम दीजियेगा, और यह कहियेगा कि मैं उनसे मिलूंगा।"

वह व्यक्ति जानता था कि मुनीमजी सेठजी का उल्लेख साहब के रूप में करते हैं। उसने कहा—"जरूर जरूर।"

ट्रक चला गया, वह व्यक्ति भी चला गया, पर मुनीमजी अब पहले से अधिक तत्पर होकर साहब की कहानियां सुनाने लगे। उन्हें केवल सौ रुपये मिले थे, पर उन्होंने इसे बढ़ाकर लोगों से कहा—"साहब मुझसे इतने खुश हैं कि उन्होंने मेरी लड़कियों के लिए नक़द २५० रुपये भेजे।"

पर मुनीमजी को आश्चर्य हुआ कि इस रकम के उल्लेख से लोग उन पर खुश नहीं हुए, बल्कि उनसे कुछ नाराज ही हुए। रामदहिन जो बनस्पति के प्रचार-कार्य में उनका दाहिना हाथ हो रहा था एक दिन गम्भीर होकर मुनीमजी के घर पर आया और इधर-उधर की बातों के बाद बोला—"मैं आपसे कुछ बात करने आया था।"

मुनीमजी इन दिनों अपने को बहुत ही महत्वपूर्ण व्यक्ति समझते थे, और यह समझते थे कि उनके पास किसी प्रकार की सलाह के लिए आना स्वाभाविक है। वे पहले से अधिक गंभीर हो गये, बोले—"कहो पण्डित क्या बात है?"

रामदहिन ने सिर खुजलाया, फिर रुकते हुए बोला—"मैं यही कहने आया था कि मैं बालबच्चेदार आदमी हूं। सिर्फ खेती से गुजारा नहीं होता।" वह कहना कुछ चाहता था पर यह कह गया।

मुनीमजी खुश होते हुए बोले—"यह तो बात ठीक है, आजकल खेती में धरा ही क्या है। मजदूर ही सब खा जाते हैं, बचता कुछ नहीं है। बस तुम्हारे लड़के को पास हो जाने दो,

साहब को कहकर ऐसी नौकरी दिलवाऊंगा कि सब दुःख कट जायगा।"

रामदहिन ने कहा—"लड़का जब पास होगा तो होगा। अभी जो साहब ने आपको २५० रुपये दिये हैं, उनमें से कुछ हमको भी मिल जाय। हमने भी तो बनस्पति के लिए दस्तखत कराने में बहुत काम किया।"

मुनीमजी का चेहरा फक पड़ गया। अब वे समझे कि बात को बढ़ाकर उन्होंने अपने लिए बड़ा भारी खतरा मोल ले लिया। इससे तो अच्छा था कि उन रुपयों को लेकर चुपचाप डकार जाते, और किसी को कुछ पता नहीं देते। लोग तो यही समझते थे कि बनस्पति का काम देश का काम है, न कोई पैसे की उम्मीद करता था और न कोई इसकी गुंजाइश देखता था। पर मुनीमजी खुर्राट व्यक्ति थे। झट से उन्होंने बात बनाते हुए कहा—"तुम क्या समझते हो कि अढ़ाई सौ मिलने पर मुझे कुछ मुनाफा रहा। कितने-कितने आदमियों का प्रबन्ध करना पड़ता था, अढ़ाई सौ से कहीं ज्यादा खर्च बैठ गया होगा।"

पर रामदहिन इन बातों में नहीं आया, और वह इसी पर अड़ा रहा कि वह ज्यादा तो नहीं मांगता उसे बस सौ रुपये दे दिये जायं, मुनीमजी बाकी डेढ़ सौ रक्खें। मुनीमजी इस बात पर किसी तरह राजी नहीं हुए। अन्त में दोनों में काफी कहा-सुनी हो गई। यहां तक कि रामदहिन ने क्रोध में यह भी कहा—"तुम्हारे साहब को जानता हूं। एक नम्बर का बदमाश मालूम देता है। अपना कारखाना खोल रखा है, सो उसके लिए गरीबों का गला कटवाना चाहता है....इत्यादि इत्यादि।"

मुनीमजी को इस शेषोक्त बात से बहुत चोट पहुंची। वे इतने खिन्न हुए कि अन्त तक उन्हें रामदहिन को साठ रुपये देने पर राजी होना पड़ा। पर उन्होंने कहा—"अभी रुपये हैं

नहीं, धीरे-धीरे दूंगा। समझो कि मैंने तुमसे साठ रुपये उधार लिये।" कहकर उन्होंने किसी प्रकार मामले को दफा-रफा किया।

वे मन-ही-मन बहुत पछताने लगे कि झूठ क्यों बोला था नहीं तो शायद बीस रुपयों में ही काम बन जाता। उन्हें यह हिम्मत नहीं हुई कि इस घटना की बात सत्यवती से कहें। रुपये मांगने की तो बात दूर रही। मन-ही-मन वे बहुत असन्तुष्ट रहने लगे। इन दिनों वे अपने को जिस प्रकार छोटा-मोटा नेता समझने लगे थे, और उनके चेहरे पर एक हर्षोत्फुल्ल भाव रहता था, वह इस घटना से जाता रहा। उन्होंने मन में यह तसल्ली कर ली कि आइन्दा जब कभी साहब का ऐसा काम पड़ेगा, तो वे किसी को नहीं बतायेंगे कि उन्हें कितने पैसे मिले।

अठारह

मुनीमजी इन दिनों अपने बेटे की शादी के सम्बन्ध में निराश-से हो चुके थे, याने वे उस सम्बन्ध में जो बड़े-बड़े स्वप्न देख रहे थे, उनका अन्त हो चुका था। वे अब किसी बहुत बड़ी बात की आशा नहीं करते थे। लड़कियों की शादी की चिन्ता भी पहले से अधिक बढ़ गई थी। लड़के की शादी से लड़कियों की शादी का खर्च निकालने के सम्बन्ध में निराशा होने के कारण चिन्ता और भी अधिक हो गई थी। जब से रामदहिन ने उन्हें इस प्रकार से मजबूर किया था, तब से साहब के सम्बन्ध में भी डींगें कम मारते थे। उनकी तबियत खराब रहने लगी थी। यहां तक कि सत्यवती कुछ-कुछ चिन्तित रहती थी। यों तो वह पति को डांटकर अपनी जगह पर रखने की अभ्यस्त थी, पर मुनीमजी की तबियत खराब देखकर उसके मन में बिलकुल दूसरी ही भावनायें उठती थीं। इन दिनों वह मुनीमजी के साथ बहुत सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार रखती थी।

जब घर-भर में इसी प्रकार निराशा की लहर दौड़ रही थी,

उस समय एकाएक एक कार आकर मुनीमजी के घर के सामने रुकी। मुनीमजी उस समय घर ही पर थे। उन्होंने समझा साहब के यहां से कोई नया काम आया है। दो दिन से दाढ़ी नहीं बनाई थी, इसका उन्हें बड़ा अफसोस हुआ, पर झट शेरवानी को जैसे तैसे पहनकर बाहर आये।

कार में दो-तीन सज्जन थे। उन लोगों ने मुनीमजी से अच्छी तरह पता लगा लिया कि वे ही बनवारीलाल हैं कि नहीं तथा यह उन्हीं का घर है या नहीं। फिर वे मुनीमजी के पीछे-पीछे बैठक में दाखिल हुए। इसी बीच में सत्यवती ने बैठक की एकमात्र लकड़ी की चौकी पर एक साफ चादर बिछा दी थी, और जो दो-तीन लकड़ी की कुर्सियां थी, उन पर की गर्द झाड़ दी थी।

बड़ी देर तक तो दोनों तरफ से दिल्ली-लखनऊ के ढंग पर बातचीत हुई, जिसमें शब्द बहुत-से प्रयुक्त हुए, पर मतलब कोई खास नहीं था। मुनीमजी ने चाय आदि के लिए पूछा, पर आगन्तुकों ने इन सारी बातों को यह कहकर मना कर दिया कि वे अभी चाय आदि पीकर आये हैं। मुनीमजी बार-बार यह जानने की कोशिश कर रहे थे कि आखिर उनके आने का उद्देश्य क्या है। पहले उन्होंने पूछा—"आप लोगों को साहब ने भेजा होगा?"

आगन्तुकों को मालूम नहीं था कि साहब कौन है, इसलिए उनमें से जो प्रमुख मालूम होता था, उसने पूछा—"साहब कौन?"

इस पर मुनीमजी ने सेठजी का नाम बिना लिये ही कहा—"मेरा मतलब अमोलकचन्द काहनचन्द के फर्म से है।"

शायद उन सब के चेहरों पर एक हंसी की लहर दौड़ गई, पर उनके प्रवक्ता ने कहा—"पता उन्हीं से मिला है।"

फिर आगन्तुकगण मुनीमजी से उनकी जाति-गोत्र आदि का सारा हाल पूछने लगे। मुनीमजी को कुछ गन्ध-सी आ गई कि हो-न-हो कुछ शादी-सम्बन्धी बातचीत है। उन्होंने अपनी आदत के अनुसार बढ़ा-बढ़ाकर बात करना शुरू किया। एक की दस-दस करके बताने लगे। अपने खानदान को तो ऐसे चित्रित किया मानो इस इलाके में वे ही वे हों। प्रवक्ता को छोड़कर बाकी दोनों महाशय मृदु-मृदु हंसने लगे, पर प्रवक्ता और भी गंभीर हो गया। अन्त में उसने मुनीमजी से कहा—"मेरी बड़ी इच्छा है कि आपके लड़के के साथ मैं अपनी भानजी की शादी करूं। मेरा भी एक छोटा-सा फर्म है।"

प्रवक्ता के साथियों में से एक ने बीच में बोलते हुए कहा—"पर वह छोटा-सा फर्म अमोलकचन्द काहनचन्द के फर्म से दुगुना है बस इतना ही समझिये" कहकर उस व्यक्ति ने मुनीमजी के चेहरे की तरफ देखा कि उन पर कितना रोब पड़ा।

मुनीमजी बहुत अधिक प्रभावित हुए, पर वे दिखाना नहीं चाहते थे कि अधिक प्रभावित हुए। बोले—"यह तो जाहिर है, पर आजकल लड़कों के मन का कुछ पता ही नहीं मिलता।"

प्रवक्ता ने समझ लिया कि मुनीमजी घाघ हैं, और एक पक्के व्यापारी की तरह वे झट से शर्तों पर उतर आये। बोले—"लड़की एफ० ए० तक पढ़ी हुई है, सब तरह से योग्य है, रंग रूप बहुत सुन्दर है। आपके लड़के को काशीजी में रहने में कोई तकलीफ न हो इसलिए मैंने यह तय किया है कि मेरा वहां पर एक छोटा-सा मकान है, उसे दहेज में दे दूंगा। इसके अलावा नकद और गहने जो कुछ मांगिये, वह दे दिया जायगा।"

मुनीमजी तो इतने खुश हुए कि उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि यह वास्तविकता है। उन्होंने धीरे से सबसे आंख बचाकर गुप्त रूप से अपने को एक चिकोटी काटी कि कहीं जो कुछ देख रहे

है, वह स्वप्न तो नहीं है। वे अब संयम से काम न ले सके, बोले—"यह तो मेरा अहोभाग्य है कि आप जैसे सज्जन से मेरा रिश्ता कायम होगा।"

"हां, मैं आपके लड़के से बहुत प्रभावित हूं। इसी कारण यहां पर दौड़कर आया हूं। मुझे कुछ नहीं चाहिए, बस लड़का अच्छा चाहिए। आप जल्दी से सब सलाह कर लीजिये। मैं चाहता हूं कि अगले महीने ही यह शुभकार्य सम्पन्न हो जाय।"

मुनीमजी ने कहा "हां हां मेरी भी तबियत खराब रहती है, और मैं चाहता हूं कि जितना जल्दी यह काम हो जाय, उतना ही अच्छा है। लड़के से भी राय ले लेनी है।"

प्रवक्ता ने कहा—"हां हां हम लोग उस तरह के नहीं हैं। यदि लड़का चाहे तो लड़की उसे या उसके किसी मित्र को या आप या आपके किसी मित्र को दिखाई जा सकती है। यदि आपकी श्रीमती जी देखना चाहें तो उन्हें मोटर में ले जाने की व्यवस्था की जा सकती है।"

मुनीमजी ने तो अब सारा संयम छोड़ ही दिया था, बोले—"देखना क्या है, पर लड़के को खबर देते, बुलाते, अन्य बन्दोबस्त करते कुछ समय तो लगेगा ही। मैं आपको एक हफ्ते के अन्दर सारा पता दूंगा।"

आगन्तुकगण इसके बाद चले गये और कह गये कि एक हफ्ते के बाद या तो आयेंगे नहीं तो कार भेज देंगे। मुनीमजी ने उनको पान-इलायची देकर विदा किया।

जब वे इन लोगों को कार पर बैठाने गये तो देखा कि वहां एक छोटी-सी भीड़ जमा है। अधिकांश तो लड़के थे, पर गांव के कुछ अन्य व्यक्ति भी इधर-उधर झांक रहे थे कि क्या मामला है। ऐसे झांकने वालों में रामदहिन भी था। जब आगन्तुक चले गये, तब वह मुनीमजी की तरफ लपका। मुनीमजी ने उसे

देख तो लिया, पर वे ऐसे बन गये कि मानों उसे देखा ही नहीं। वे जल्दी से भीतर जाकर सत्यवती के साथ सारी बात की चर्चा करना चाहते थे। अवश्य उन्हें यह तो विश्वास था ही कि आड़ में खड़े होकर सत्यवती सारी बात अपने कानों सुन चुकी है। फिर भी वे विचार-विनिमय के लिए उत्सुक थे। वे बैठक की तरफ बढ़े, साथ-साथ रामदहिन ने आंख मारते हुए कहा—"मुनीमजी, ये लोग कौन थे?"

आंख मारने से मुनीमजी बहुत अप्रसन्न हुए, और रामदहिन से आंख बिना मिलाए हुए गम्भीरता के साथ बोले—"लड़के की शादी के लिए आये थे। साहब से दुगुने अमीर हैं। कहते थे कि बनारस में एक कोठी देंगे, और गहना और नकद मिलाकर ३० हजार और देंगे।"

रामदहिन का चेहरा फक पड़ गया। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे उसके हृदय की गति रुक जायगी। बोला—"आप राजी हो गये न?"

मुनीमजी ने अवज्ञा के साथ कहा—"मैं राजी होनेवाला कौन होता हूं। जिसकी शादी वह जाने। मेरा काम तो इतना है कि उसे लिख दूं। फिर वह जाने उसका काम जाने।"

रामदहिन ने कहा—"कहिये तो मैं बनारस चला जाऊं? इसी बहाने विश्वनाथजी का दर्शन भी हो जायगा।"

मुनीमजी ने इन्कार करते हुए कहा—"तुम कहां जाओगे वहां साहबों का मामला है। तुम्हारे वश का काम नहीं है। न होगा तो मैं खुद ही चला जाऊंगा।"

रामदहिन इस बात से अप्रसन्न हुआ कि वह इस लायक समझा ही नहीं गया कि वह बनारस भेजा जाय। बोला—"जैसी आपकी मर्जी। मैं तो इसलिए कह रहा था कि बूढ़े आदमी हो कहां बनारस की गलियों में भटकते फिरोगे।"

बूढ़े कहे जाने पर मुनीमजी बहुत खिन्न हुए। बोले—"मुंह संभाल कर बात करो जी। जो लोग आये थे वे गलियों के रहने वाले नहीं हैं। कह दिया कि वे साहब से दुगुने अमीर हैं।"

रामदहिन मन में क्रुद्ध तो हुआ पर ऊपर से हंसने लगा, बोला—"मैंने यह थोड़े ही कहा कि वे गलियों में रहते हैं। उनकी मोटर इतनी बड़ी है कि गली में घुस ही नहीं सकती।"

"हां ऐसे बात करो। तुम्हारे साठ रुपये हैं सो दे दिये जायंगे।"

उधर से सत्यवती ने कर्कश स्वर में कहा—"साठ रुपये कैसे?" कहती हुई वह न मालूम कहां से प्रगट हो गई।

दोनों उसे देखकर सहम गये। रामदहिन का तो बुरा हाल हुआ। बोला—"हें हें हें हें, कुछ नहीं ये रुपये उधार के थोड़े ही हैं। मुनीमजी ने कहा था कि लड़के की अच्छी शादी लगेगी तो वे मुझे साठ रुपये दक्षिणा में देंगे।"

मुनीमजी ने माफी मांगने के तौर पर हंसते हुए इस कथन का जैसे समर्थन किया। पर सत्यवती पहले से अधिक तीखी होकर बोली—"अभी लड़के की शादी नहीं हुई, और दान-दक्षिणा खैरात बंटने लगी। मैं किसीको एक भी पैसा न दूंगी।" कहकर उसने उग्ररूप से रामदहिन को देखा।

रामदहिन पर इसका ऐसा असर हुआ कि वह उसी प्रकार बिना कुछ कहे-सुने बैठक से निकल गया। सत्यवती ने काफी जोर के साथ उसकी पीठ पर दरवाजे को बन्द कर दिया।

उन्नीस

बनस्पति के प्रचार कार्य के लिए जो केन्द्रीय दफ्तर खुला था सेठ अमोलकचन्द को वहां से ट्रन्क काल में यह मालूम हुआ कि केन्द्रीय सरकार को इधर के इलाकों से बहुत-से तार मिले हैं। यहां तक तो सब ठीक था। पर साथ-ही-साथ यह मालूम हुआ कि जितने भी तार इस प्रकार भेजे गये, वे सब बनस्पति के विरोध में थे। सेठजी को इससे बहुत आश्चर्य हुआ, और वे समझ गये कि सन्तोषकुमार की कुछ कारस्तानी है। आगबबूला होकर उन्होंने सन्तोषकुमार को अपने सामने बुलाया, और सारी परिस्थिति बताई। स्वयं सन्तोषकुमार को इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ, पर सेठजी ने यह समझा कि यह बन रहा है, इसलिए वे और भी बिगड़े। वह हर समय संयम का जो चेहरा पहने रहते थे, वह अपनी भद्द के कारण उतर गया, और वे अपने असली रुद्र रूप में प्रकट हुए। क्रोध में बोले—"जो तुम्हें यह काम करना ही नहीं था, तो साफ़ बता क्यों नहीं दिया। धोखे से क्यों काम लिया? मेरे पास

बहुत-से आदमी हैं। मैं किसी और को यह काम सौंप देता। तुम्हें यह तो अधिकार है कि किसी काम को करो या न करो, पर तुम्हें किसी को धोखा देने का अधिकार नहीं है। यदि तुम्हारा विवेक इतना पुछल्लेदार है तो तुम्हें मेरी नौकरी नहीं करनी चाहिये थी। मुझसे साफ कह देते कि यह काम तुम्हें पसन्द नहीं। इस तरह से मेरे रुपयों को क्यों खराब किया? फिर रुपयों का भी गम नहीं है, हम कमेटी के सामने बेवकूफ बन गये" इत्यादि इत्यादि।

सन्तोषकुमार ने बहुतेरा समझाया कि उसने तारों के मजमून को बदला नहीं, पर सेठजी नहीं माने। बोले—"एक तो तुमने धोखा दिया, और फिर सरासर झूठ बोलते जा रहे हो। तुम्हें शर्म आनी चाहिये। मैं तुम्हें मानूं या केन्द्रीय सरकार के पास से जो रिपोर्ट मिली है, उसको मानूं? तुम्हारे बाप इतने अच्छे आदमी हैं, तुम ऐसे कैसे निकले?" इसी प्रकार वे देर तक बकते गये।

सन्तोषकुमार की यह समझ में नहीं आ रहा था कि बात क्या है। जब सेठजी बड़ी देर तक चमक कर शान्त हुए, तब उन्होंने सन्तोषकुमार से सारी बात पूछ ली कि कैसे रामजियावन के साथ उसका साबका हुआ, और कैसे वह उसके घर पर गया, और फिर कैसे उसने तार देने में मदद दी। सारी बात सुनकर सेठजी समझ गये कि रामजियावन ने उसे बेवकूफ बनाया है। फिर भी उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ, बोले—"मैंने तुमको खुद सारा काम करने के लिए कहा था और तुम जाकर एक हरामजादे के चक्कर में फंस गये। तुम पढ़े-लिखे हो तुमसे ऐसी उम्मीद नहीं थी।"

सन्तोषकुमार ने कहा कि उसे नहीं मालूम था कि वह ऐसा आदमी है। अन्त में उसने यह भी कहा कि वह सेठजी की

क्षतिपूर्ति के लिये तैयार है। क्षतिपूर्ति का नाम सुनकर सेठजी शान्त हुए, पर उन्होंने कहा—"जाओ अभी मेरा नाम लेकर मेरे प्राइवेट सेक्रेटरी से सब सामान लो और चार घंटे के अन्दर सारे तारों को रवाना कर दो। अबकी एक जीप ले जाओ। मैं तुम्हें अबकी बार के लिये माफी देता हूं, फिर कभी ऐसे लोगों के चक्कर में न फंसना। ये लोग बड़े चालाक होते हैं। रात को होशियारी से रहना नहीं तो जीप भी उड़ाकर चल देंगे।" कहकर उन्होंने और भी कुछ हिदायतें दीं, पैसों के लिये सेक्रेटरी के नाम एक चिट दिया और फिर उसे रवाना कर टेलीफोन को उठा लिया।

उन्होंने टेलीफोन से पुलिस के उसी अफसर को बुलाया, बोले—"बहुत जरूरी काम है यहां आइये। आपके ही फायदे की बात है। बहुत जबर्दस्त शिकार फंसा है।"

पुलिस अफसर ने फौरन आने का वायदा किया। सेठजी रीसिवर डालकर अपने कमरे के अन्दर चहलकदमी करने लगे। जैसे कटघरे में बन्द सिंह हों। थोड़ी देर में वह अफसर उपस्थित हुआ। सेठजी ने उसे रामजियावन वाला सारा किस्सा कह सुनाया। इस पर वह खूब हंसा। बोला—"यह तो डार-डार और पात-पात वाला किस्सा हुआ। आप लोग सरकार को धोखा देना चाहते हैं और ये आपको धोखा देते हैं। हा हा हा हा। मैं सारे वर्णन से समझ गया कि यह रामजियावन कौन है। इतना तो साफ है कि रामजियावन उसका असली नाम नहीं है, यह भी बिलकुल स्पष्ट है कि वहां उसका घर नहीं है। जो कुछ भी हो उसने खूब चकमा दिया। हा हा हा हा।"

सेठजी इन बातों को सुनकर खिन्न हुए। बोले—"सरकार को धोखा देने की कोई बात नहीं है। जनता तो हमेशा चुप रही है और रहेगी। चाहे कांग्रेस उसकी तरफ से बोले या कोई

और संस्था, वह खुद कभी नहीं बोलती। मैं जानता हूं, जनता में बनस्पति के लिये बहुत मांग है, पर वह इस बात को कह नहीं पाती, इसीलिये उसकी तरफ से हमें मजबूरी से बोलना पड़ रहा है।"

पुलिस अफसर ने बीच में बोलते हुए कहा—"यह सब बात ठीक होती यदि बनस्पति के प्रचार से आपके मुनाफे की रकम नहीं बढ़ती। यदि आप किसी अच्छे काम को भी करें, और उस से आपको मुनाफा हो तो शक पड़ जाता है। है न यह बात? आप इतनी मोटी-सी बात तो समझते होंगे।"

"मुनाफा ही मुनाफा है यह समझना गलत है। देखिये इन तारों में हमारे सैकड़ों रुपये खर्च हो गये।"

"सो तो ठीक है पर यह खर्च उसी प्रकार का है जैसे आप किसी कारोबार में पूंजी लगाते हैं। पूंजी जब लगाई जाती है तो तुरन्त मुनाफा नहीं होने लगता। यह सारा खर्च विज्ञापन की मद में आ सकता है। सरकार को आप इन तारों से अपनी तरफ करना चाहते हैं, अगर वह हो जाय, तो इससे बढ़कर क्या बात है। फिर तो आपके पौबारह हैं। तुरन्त मीटिंग करके बनस्पति का भाव बढ़ा देंगे, और एक दिन में चुटकी बजाते ही सारा खर्च वसूल हो जायगा।"

सेठजी ने देखा कि बातचीत दूसरे ही ढंग पर हो रही है। सूखी हंसी हंसते हुए बोले—"जाने दीजिये काम की बात पर आइये। आप रामजियावन को गिरफ्तार नहीं कर सकते? इसमें तो आपको दिलचस्पी होगी।"

पुलिस अफ़सर ने शरारत-भरी हंसी हंसते हुए कहा—"मुझे तो कानून के विरुद्ध सब तरह की कार्रवाइयों का पर्दाफाश करने में दिलचस्पी है। यदि मैं रामजियावन को इस मामले में गिरफ्तार करता हूं कि उसने सन्तोषकुमार के साथ चार सौ

बीस किया, तो हमें शायद सन्तोषकुमार को और शायद आपको भी इस कारण गिरफ्तार करना पड़े कि आप लोग षड्यंत्र करके सरकार के साथ चार सौ बीस कर रहे थे।"

"सरकार के साथ चार सौ बीस कैसा ?" सेठजी ने कुछ अधिक रुखाई के साथ कहा।

पुलिस अफसर ने पहले से अधिक शान्त स्वर में कहा—"आप इन तारों से सरकार को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि गांव-गांव से बनस्पति के पक्ष में तार आ रहे हैं, जब कि सत्य यह है कि बनस्पति का एक व्यापारी अपने स्वार्थ के लिए इन तारों को दिलवा रहा है। यही चार सौ बीस है।"

"तो ?"

"तो क्या ? इसलिए आपको ऐसी बात नहीं उठानी चाहिए जिसमें आपको ही नुकसान पहुंचे।"

"मिस्टर सिंह, आप कहां की बातें कर रहे हैं, आप जानते हैं कि मुझे कोई नुकसान नहीं पहुंच सकता।"

"यह सच है कि आप जेलखाने नहीं जायेंगे, पर आपका जो लक्ष्य है वह व्यर्थ हो जायगा। आपका किसी भी प्रकार से नाम आते ही अखबारों में शोर मचेगा, और लोग जान जायेंगे कि बनस्पति के लिए आप लोग किस प्रकार से झूठा प्रचार-कार्य कर रहे हैं। यदि बनस्पति अच्छी चीज भी हो, तो भी लोगों को जहां यह मालूम होगा कि उसके पक्ष में इस-इस तरह के फरेब किये जा रहे हैं तो लोग समझेंगे कि दाल में काला है।"

सेठजी इस समय तक अपने मन में यह सारी बात समझ चुके थे, लहजा बदलकर बोले—"तो आप क्या करने को कहते हैं ?" कहकर उन्होंने उत्सुक नेत्रों से पुलिस अफसर को देखा।

इस लहजे से वह महाशय भी पिघले। समझ गए कि अब सौदा पटने का ढंग है। बोले—"राम जियावन के मामले को तो

आप मुझ पर छोड़िए। मेरा तो कर्तव्य है कि उसका पता लगाऊं। सच तो यह है कि यदि वह वही व्यक्ति है, जिसे मैं समझ रहा हूं तब तो हम उसका पीछा कर ही रहे हैं। रहा यह कि पकड़ जाने पर भी उस पर हम यह अभियोग नहीं लगा सकते कि उसने सन्तोषकुमार के साथ चार सौ बीस किया। इसमें सिर्फ मुझे आपका ख्याल है।"

सेठजी खिलखिलाकर हंसते हुए बोले—"बस आप लोगों की मेहरबानी चाहिए।"

इसके बाद दोनों में काफी देर तक चुपचाप बातचीत होती रही। अन्त में सेठजी ने कहा—"मैं इस सन्तोषकुमार के सम्बन्ध में भी कुछ शक करने लगा हूं। इसकी बातचीत कम्युनिस्टों की तरह है। कोई ताज्जुब नहीं जो इसने खुद ही तार बदलकर दिए हों, और अब बनाकर रामजियावनवाला किस्सा सुना रहा है। आप उस पर भी जरा निगाह रक्खें। यह आप समझ ले कि यदि सरकारी कार्य के लिए उसे गिरफ्तार करना जरूरी हो, तो आप ऐसा कर सकते हैं, मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। बात यह है कि मैं अपने स्वार्थ को देश के स्वार्थ से हमेशा नीचे करके देखता हूं।"

पुलिस अफसर ने शान्त पर अर्थपूर्ण शब्दों में कहा—"मैं आपका इंगित समझ गया। आप विश्वास रक्खें काम हो जायगा।" कहकर उसने सेठजी से धीरे से कुछ और बातें कहीं।

थोड़ी देर में पुलिस अफसर सेठजी से विदाई लेकर चला गया। जाते समय सेठजी ने उसकी मुट्ठियों में कुछ कागज-से रख दिए। जब वह अफसर चला तो सेठजी अपने मन में बड़-बड़ाने लगे—'जिधर देखो उधर लूट मची हुई है। बुलाया एक कम्युनिस्ट को गिरफ्तार कराने के लिए, आकर वह मेरी ही गिरफ्तारी की बात करने लगा। ऐसे यह देश कब तक चलेगा।"

इस प्रकार से सेठजी देश के भविष्य के विषय में दुखी होकर गुप्त कपबोर्ड की तरफ बढ़े, और गम गलत करने के लिए पेग पर पेग चढ़ाने लगे। उन्हें इस समय कई गम थे–गलत तार चले जाने का गम, उतने पैसों की हानि, अपनी कमेटी में बदनामी, पुलिस अफसर के सामने नीचा देखना, और सबसे बड़ा गम यह था कि मिस्टर सिंह को दक्षिणा के रूप में १००) रुपये देने पड़े।

बीस

सन्तोषकुमार को अब की बार जो काम दिया गया था, उसने उसे बड़ी सफलता के साथ अंजाम दिया। जीप में दो ही व्यक्ति थे एक ड्राइवर और एक वह। रामजियावन के मामले से उसका दिल इतना खट्टा हो गया था कि उसने किसी का विश्वास नहीं किया। वह रास्ते में मिलनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को रामजियावन ही समझता था। यहां तक कि उसने ड्राइवर का भी विश्वास नहीं किया। हर समय उस पर भी निगरानी रखता था। उसने उसे यह भी हिदायत दी थी कि वह किसी राहगीर से बेकार में बात न करे, और जिस समय वह तारघर के अन्दर जाय उस समय किसी को जीप के पास फटकने न दे। रास्ते में कोई विशेष घटना नहीं हुई, और वह सारा काम अच्छी तरह करके लौट आया। लौटकर उसने रसीदों को सेठजी के प्राइवेट सेक्रेटरी के हवाले कर दिया, और अपने घर पहुंचा। यह सारा काम तो वह जैसे एक सनक में कर गया था, पर जब वह घर पर पहुंचा और सारी बातों को सोचने लगा, तो उसकी समझ में आया कि

उसकी परिस्थिति कितनी हास्यजनक हो रही है। उसे अपने ऊपर दया आई। उसे घरवालों पर क्रोध भी आया क्योंकि वह समझ रहा था कि घरवाले ही उसे इस नौकरी को करने के लिए मजबूर कर रहे हैं।

इसी उधेड़बुन में उसने न तो कुछ खाने-पीने को सोचा, न और कोई बात। वह जैसे तुल गया था आज ही इस समस्या का समाधान करेगा, पर जितना ही सोचता, उतना ही उसे कोई चारा नहीं दिखाई दे रहा था। नौकरी छोड़ने की बात उसके लिए आत्महत्या करने की बात से कम कठिन नहीं थी। एक ट्यूशन था पर इन दिनों वह ट्यूशन से इतने दिनों तक अनुपस्थित रहा कि उसे कुछ-कुछ शक हो चला था कि यह ट्यूशन टिकेगी नहीं। इसके अतिरिक्त उसे यह रुचता नहीं था कि काम बिना किए पैसा ले। इसलिए उस ट्यूशन का भरोसा करना गलत था। नौकरी छोड़कर घर में आश्रय पाने की बात अकल्पनीय थी। उसे तो यहां तक डर था कि कहीं वह नौकरी छोड़कर घर जाय तो उसके पिता के हृदय की गति रुककर उनकी मृत्यु न हो जाय।

इस प्रकार सोचते हुए उसने चाय बनाने की तैयारी की। उसने देखा कि दरवाजे के पास एक लिफाफा पड़ा है। पहले तो उसने समझा घर का होगा पर उठाकर देखा तो वह और पत्र था। यह तो उसकी किसी अर्जी का उत्तर था। ऐसा सोचते ही उसका रक्त बहुत जोरों से दौड़ने लगा। कांपते हुए हाथों से उसने पत्र को खोला तो यही बात सच निकली। उस पत्र में उसे इन्टरव्यू पर आने के लिए कहा गया था।

इस पत्र को पढ़कर उसे इतनी खुशी हुई मानो उसे कामधेनु हाथ लग गई हो। उसका मुरझाया हुआ चेहरा एकदम से प्रफुल्लित हो उठा, उसने झट-से अपना बकस खोला और सारे

कपड़ों को उलट-पुलटकर यह तय करने लगा कि कल वह किन कपड़ों को पहन कर इन्टरव्यू में जायगा। बड़ी देर तक सोचने के बाद उसने उसी सूट को निकाला जिसे पहनकर वह पहले इन्टरव्यू में गया था। उसके पास यही एकमात्र सूट था। उस सूट को निकालकर उसने बक्स बन्द कर दिया, पर जब उसने इसके बाद आये हुए पत्र को फिर से पढ़ा, तो उसने राय बदल दी। पत्र के लेटरहेड में डाक्टर शकुन्तला देवी एम० ओ० एल० लिखा हुआ था। उसने सोचा कि जब वह अपने को देवी लिखती है तो सूट पहनकर जाने से शायद कुर्ता-पजामे में जाना अधिक अच्छा होगा। यह विचार उसके दिमाग में क्यों आया पता नहीं, पर उसके मन में यह विचार आते ही उसने सूट को ट्रंक में बन्द कर दिया और धोबी का धुला एक खद्दर का कुर्ता और पाजामा निकाल लिया। इसके बाद उसने अपने पेशावरी चप्पल में पालिश की। कहीं वह गलती तो नहीं कर रहा है यह देखने के लिये उसने पत्र को फिर पढ़ा, और उसे अबकी बार पूर्ण विश्वास हो गया कि कुर्ता पजामा ही ठीक रहेगा।

इस प्रकार सारी तैयारियां समाप्त कर उसने बांस की बनी हुई रैक से फटा-पुराना एक हनुमान चालीसा निकाला, और देर तक उसका पाठ करता रहा। जब रात अधिक हो गई तब वह सो गया।

अगले दिन ठीक दस बजे वह डाक्टर शकुन्तलादेवी की हवेली पर पहुंच गया। वहां उसे एक कमरे में बैठाया गया। थोड़ी देर में एक स्त्री ने आकर उससे पूछा कि वह किस काम से यहां आया है। तब उसने वह पत्र दे दिया। उस स्त्री ने पत्र को देखा, फिर उसे बड़े ध्यान से देखा, और फिर भीतर चली गई। थोड़ी ही देर में भीतर से उसका बुलावा आया।

एक भद्र महिला के सामने वह खड़ा कर दिया गया। उसने जब नमस्ते किया तो उस महिला ने उसे बैठने के लिये कहा, और इस बीच में उसे सिर से पैर तक देख लिया। आगन्तुक को खद्दर पहने हुए देखकर वह महिला जैसे कुछ खुश हुई क्योंकि यह उसके व्यवसाय के उपयुक्त परिच्छेद था। उस महिला ने पूछा—"आप कभी कांग्रेस में थे?"

सन्तोषकुमार ने समझा कि महिला शायद कांग्रेस से सहानुभूति रखती है। बोला—"जी हां मैं बराबर कांग्रेस का सदस्य रहा।"

"आप कभी जेल में गये?"

"नहीं जेल तो नहीं गया। पर और सब तरीकों से कांग्रेस में मदद देता था।" वह और भी कुछ कहने जा रहा था कि बीच ही में वह महिला बोल पड़ी—"पर आपके विचार बहुत कट्टर तो नहीं हैं?"

"कट्टर कैसा?" सन्तोषकुमार कुछ आश्चर्य तथा भय के साथ बोला—"नहीं, मैं तो उदार विचार रखता हूं।"

वह महिला कुछ आश्वस्त हुई, बोली—"कट्टर से मेरा मतलब यह है कि आप सत्य और अहिंसा को पागलपन तक ले जाना तो नहीं चाहते? बात यह है कि मेरी यह संस्था व्यापारिक है, और आप जानते ही हैं कि व्यापार में पूरी सचाई नहीं चल सकती। खूब समझ लीजिये।"

सन्तोषकुमार मन में कुछ डरा कि यहां भी सेठजी के ही ढंग पर बातचीत हो रही हैं। उसे बड़ी ग्लानि हुई, पर उसने कहा—"नहीं, मैं व्यवहारिकता से बाहर जाना नहीं चाहता। यदि मुझे सत्य और अहिंसा पर जान देनी होती, तो मैं हिमालय न चला जाता, नौकरी करने क्यों आता?"

वह महिला अब बहुत खुश हुई और बोली—"मैं यह सुनकर बहुत खुश हूं कि आपके विचार इतने सुन्दर हैं। एक बात और, प्रत्येक व्यापार का अपना एक ट्रेड सिक्रेट होता है, आप जो कुछ यहां देखेंगे, उसे बाहर किसी से नहीं कह सकते। खूब सोच लीजिये।"

सन्तोषकुमार ने कहा—"जी हां खूब सोच लिया। मैं किसी भी हालत में यहां की बात बाहर नहीं कहूंगा।"

इस प्रकार सारी बातें तय हो गई, और अगले सप्ताह से सन्तोषकुमार नौकरी पर बहाल हो गया। यद्यपि सेठजी के यहां कुछ तनख्वाह बाकी थी, उसने उस दिन से सेठजी के यहां जाना बन्द कर दिया। सेठजी की तरफ से भी कोई खबर नहीं आई। इस कारण वह यथासमय अपनी नई नौकरी पर उपस्थित हो गया। उसका काम यह था कि वह एक सेक्रेटरियेट मेज के सामने गम्भीर चेहरा बनाकर बैठा रहता था। जो लोग आते थे उनको बैठाता था, और उनमें से प्रत्येक से पांच रुपये लेकर बारी-बारी से उन्हें भीतर भेजता था। जो लोग आते थे, उनमें से नब्बे फीसदी स्त्रियां होती थीं। बाकी दस फीसदी पुरुष स्त्रियों के साथ आते थे, और वे कभी अन्दर नहीं जाते थे, उनके साथ की स्त्रियां ही अन्दर जाती थीं। वह यह तो समझ गया कि डाक्टर शकुन्तला स्त्री-रोग की विशेषज्ञा है, पर इससे अधिक नहीं। धीरे-धीरे उसने समय निकालकर वहीं पर बैठे-बैठे अखबार आदि पढ़ना भी शुरू किया। वह मन में बहुत सुखी था कि आखिर सेठजी से छुटकारा तो मिला। यद्यपि सेठजी के फर्म के मुकाबले में तनख्वाह थोड़ी थी, पर काम भी तो कुछ नहीं था। बड़े मजे का धंधा था। बस बैठे रहो, कभी-कभी तो उसका जी ऊब जाता था क्योंकि घंटों तक कोई आता नहीं था। बीच-बीच में डाक्टर शकुन्तला की पता नहीं नौकरानियां थीं या कौन थीं

आकर उसे छेड़ती थी, पर वह उनकी बातों का कोई उत्तर नहीं देता था। बस यही एक तकलीफ उसे थी। पर नौकरी ही थी, क्या करता इसे सहन करता था।

कभी-कभी एक-आध मित्र पूछ देते थे कि कहां नौकरी करते हो, कितना पाते हो इत्यादि। पर वह उनको टाल देता था। न मालूम क्यों किसी को बताने की इच्छा नहीं होती थी कि वह क्या काम करता है। पर उसने एक दिन अपने मेज के सामने बैठे-बैठे सोचा कि वह ऐसा क्यों करता है तो उसे कोई कारण नहीं मिला। उस दिन से जो भी उसे पूछता उसे बता देता कि अब वह डाक्टर शकुन्तला के यहां काम करता है। एक उसका मित्र था जिसको उसने डाक्टर शकुन्तला का नाम बता दिया कि वह उनके यहां काम करता है। इस पर वह मित्र चौंक पड़ा और बोला—"ऐं तुम वहां काम करते हो ?" कहकर वह हंसा।

इससे संतोषकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ, बोला—क्यों ?"

"क्यों क्या, तुम्हें नहीं मालूम ?"

"नहीं मुझे तो कुछ नहीं मालूम। मुझे तो इतना ही मालूम है कि डाक्टर शकुन्तला एक लेडी डाक्टर है। तुमने क्या सुना है ?" कहकर उसने बड़े ध्यान से उस मित्र को देखा और प्रतीक्षा करने लगा कि वह क्या कहता है। पर उस मित्र ने कुछ सोचकर कहा—"तुम बड़े बुद्धू हो जी, खैर तुम्हें सब मालूम हो जायगा।"

इस पर सन्तोषकुमार ने अपने मित्र से बहुत पूछा, पर वह कुछ नहीं बोला। वह मित्र तो चला गया पर उस दिन से सन्तोषकुमार सजग रहने लगा, फिर भी उसे कोई बात नहीं मालूम हुई। उसने सोचा उसके मित्र ने खामखाह वह बात कही थी, और उसका कोई अर्थ नहीं है। फिर भी वह पहले से अधिक सावधान तो रहने ही लगा।

उस दिन डाक्टर शकुन्तला कुछ अस्वस्थ थी, या पता नहीं बाहर गई हुई थी, उसे यह हिदायत थी कि जो भी रोगिणी आवे उसे अगले दिन आने के लिये कहे। कोशिश तो यह करे कि फीस ले ले जिससे कि उनका अगले दिन आना निश्चित हो जाय पर यदि वे पैसा न दें, तो उन्हें कल आने के लिये कहे। वह ऐसा ही कर रहा था। कई रोगिणियां तो पैसा देकर चली गईं, कइयों ने कहा—कल ही देंगी। आधे घंटे से कोई व्यक्ति नहीं आया था, उसे बैठे झपकी-सी आ रही थी। दिन का १ बज चुका था। एक अधेड़ उम्र का पुरुष आया, जिसे देखने से पता लगता था कि वह कुछ घवड़ाया हुआ है। उसकी दाढ़ी कई दिन से बनी नहीं थी, और आंख के नीचे काली रेखा थी। वह व्यक्ति उसे सामने देखकर सकपकाया। बोला—"यह डाक्टर शकुन्तला देवी का घर है न?" कहकर वह फिर हिचकिचाया और एक कुर्सी की पीठ पकड़कर खड़ा हो गया मानो यह सोच रहा हो कि बैठेगा कि नहीं।

सन्तोषकुमार ने कहा—"जी हां यह उन्हीं का घर है। बैठिये। आपको क्या काम है?"

कुछ उत्तर बिना दिये वह व्यक्ति कुर्सी पर बैठ गया। उसने एक गहरी सांस ली, फिर चारों तरफ देखकर सन्तोषकुमार से बोला—"मैं एक जरूरी काम से आया था।"

"जी हां, बतलाइये क्या काम है? मैं उनका सेक्रेटरी हूं।"

उस व्यक्ति ने कहा—"मुझे उन्हीं से मिलना था।"

"हां हां उनसे आप खुशी से मिलिये, पर वह केवल स्त्रियों का ही इलाज करती हैं। आप समझ गये न?"

"जी हां मेरी एक लड़की, नहीं-नहीं रिश्तेदार का इलाज करवाना है, उसी के सम्बन्ध में पूछना है।"

"क्या पूछना है, पूछिये न?"

वह व्यक्ति हिचकिचाया, फिर मेज के उस पार से अपने मुंह को सन्तोषकुमार के पास लाते हुए बोला—"मेरी एक रिश्तेदार को गर्भ रह गया है। आप समझ गये न ? मैं चाहता हूं कि यह किसी तरह खारिज हो जाय। इसके लिये जितना खर्चा कहिये मैं करने को तैयार हूं। पर काम जल्दी होना चाहिये।"

सन्तोषकुमार ने जो यह सुना तो उसके पैर के नीचे से जमीन खिसक गई। उसे उस मित्र की भी याद आई जिसने डाक्टर शकुन्तला के यहां नौकरी के नाम से हंसी उड़ाई थी। तो यहां यह काम होता है। अरे राम राम, वह कहां आकर फंस गया। तभी डाक्टर शकुन्तला कहती थी कि आप यहां खद्दर पहन कर बैठा करें क्योंकि खद्दर सब बुरे कामों के लिये एक आवरण का काम दे रहा है। उसे ऐसी इच्छा हुई कि फौरन मेज छोड़कर भाग चले। उसने रुखाई के साथ उस आदमी से कहा—"आप कल आइयेगा, आज डाक्टर साहब नहीं मिल सकतीं।" कहकर उसने आदमी की तरफ से मुंह फेर लिया, मानो वह कोई सांप हो जो उसको डंस लेगा। पर वह आदमी नहीं उठा, बोला—"खैर मैं आऊंगा तो कल ही, पर यह तो बताइये कि यह काम पक्के तौर पर हो जायगा कि नहीं, नहीं तो मैं और कहीं कोशिश करूं। खर्च करने में पीछे नहीं हटूंगा।"

संतोषकुमार ने पूर्ववत् रुखाई के साथ कहा—"यह आपकी मर्जी है। कल सवेरे आइयेगा।"

वह आदमी समझ गया कि डाक्टर शकुन्तला का सेक्रेटरी इससे अधिक नहीं बतायेगा। वह खड़ा हो गया, फिर ध्यान से चारों तरफ देखा, और वहां से चला गया।

सन्तोषकुमार वहां बैठे-बैठे अजीब उधेड़बुन में पड़ गया। उसने सोचा कि यह अच्छा तमाशा रहा कि सेठजी के चंगुल

से छूटे तो यहां आकर फंस गये जो किसी हालत में उस जगह से अच्छा नहीं है। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, और अपने ऊपर कुछ दया भी आई कि महीना भर से अधिक समय से वह यहां पर बैठता है, और उसे यह पता तक नहीं हुआ कि यहां स्त्रियां क्यों आती हैं। अब जो उसने इस नई रोशनी में सोचना शुरू किया, तो उसे एक-एक कर यहां की सारी बातों का अर्थ मालूम हुआ। वह जो काली कलूटी-सी अप्रियदर्शन एक चमारिन-सी है, जो डाक्टर शकुन्तला की प्रधान असिस्टेन्ट मालूम होती है, वही इस काम में सबसे अधिक हाथ बटाती होगी। तभी उसके चेहरे पर पाप की एक छाप मालूम होती है। अच्छा यह बात है। और यह डाक्टर शकुन्तला कहां की डाक्टर है? एम० ओ० एल० तो प्राच्य विद्या की डिग्री है, इससे डाक्टरी अथवा धात्री विद्या से कोई सम्बन्ध नहीं। फिर भी इतने लोग यहां आते हैं, बल्कि आती हैं, इसका यही रहस्य है। जो लोग असली डाक्टर हैं, वे ऐसा काम करते नहीं हैं, इसी कारण इन लोगों की चलती है।

उसने घड़ी की तरफ देखा तो दो बजने को हो रहा था। डाक्टर शकुन्तला की यह हिदायत थी कि वह रात को आठ बजे तक बैठा रहे, और इस बीच में चाय आदि की आवश्यकता हो तो वहीं पर नौकर से मंगा ले। हिदायत बहुत स्पष्ट थी, पर सन्तोषकुमार अपनी कुर्सी पर से उठा, और नौकर को बुलाकर कहा कि वह कमरा बन्द कर ले। नौकर ने उसके चेहरे की तरफ ध्यान से देखा कि वह जो कुछ सुन रहा है, वह ठीक है या नहीं, पर सन्तोषकुमार कुछ न बोल कर बाहर निकल गया।

सन्तोषकुमार के मन में इस समय बहुत आलोड़न हो रहा था जैसे तूफान के बीच में नाव डगमगाये। वह कुछ समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे। नौकरी करना जरूरी था सच

तो यह है कि नौकरी के उद्देश्य से ही उसने सारी पढ़ाई की थी। और नौकरियों की यह हालत थी। क्या सभी नौकरियां ऐसी हैं। फिर तो बड़ी मुसीबत है। तो क्या उसके पिताजी का कहना ही ठीक है कि अधर्म नौकर को नहीं लगता, उसी को लगता है जो उसे कराता है। इसी प्रकार की गुत्थियों में उलझा हुआ वह जाकर एक पार्क में बैठ गया।

समस्या बहुत कठिन थी। उधर पिताजी के बड़े करुण पत्र आ रहे थे। इधर उन्होंने शायद कोई शादी तय कर ली थी, और उसी के सम्बन्ध में बराबर पत्र आ रहे थे। प्रत्येक पत्र में यही आता था कि चले आओ। अन्तिम पत्र में पिताजी ने यह लिखा था कि दो-चार दिन देखकर वे खुद ही आयेंगे। जब यह पत्र आया था तो वह कुछ घबड़ाया था। बात यह है वह जानता था कि उसके पिताजी की सारी उछल-कूद इस खूंटे के बल पर थी कि वह सेठजी के उर्फ साहब के यहां नौकर है। पर वह नौकरी तो कब की छूट चुकी थी। अवश्य उसे दूसरी नौकरी मिल गई थी, पर इसमें तनख्वाह उसको बहुत कम थी। और उसके पिताजी जो कुछ भी विवाह आदि तय कर रहे थे, वह यही बताकर कर रहे होंगे कि वह अच्छी जगह नौकर है और अच्छी तनख्वाह पा रहा है। पर यह बात तो झूठी हो चुकी थी। इसी कारण उसने पिता के पत्रों के इन अंशों का उत्तर नहीं दिया था। उन्हें यह लिखना तो बहुत अनुचित था कि उसने वह नौकरी छोड़ दी है और अब एक घटिया नौकरी करता है, क्योंकि इससे उन्हें बहुत भारी धक्का लगता।

और अब यह गुल खिला। उसे ख्याल आया कि इस प्रकार गुत्थियों में पड़ने से तो यही अच्छा है कि वह लंगोटी लगाकर साधु हो जाय। सचमुच वह अपने को इस जगत के अनुपयुक्त पा रहा था। आखिर हजारों-लाखों आदमी काम कर

रहे हैं, पर उन्हें ऐसे दुर्भाग्यों का सामना नहीं होता। क्या बात है कि वही ऐसी बातों का शिकार होता है। तिस पर तुर्रा यह कि मां-बाप उसकी शादी पर तुले हुए हैं। जरूर ही बहुत बढ़ाकर बातें कही गई होंगी, तभी कोई धनी फंसा है। पर वह अपनी तरफ से किसी को धोखा देना नहीं चाहता।

वह इस प्रकार से सोच रहा था इतने में सामने से वही व्यक्ति पैंट संभालता हुआ आता दिखाई दिया जिसे उसने सेठ जी वाले इन्टरव्यू में देखा था, और जिसने यह बताया था कि बीमियों इन्टरव्यू में गया है, पर कहीं ढंग नहीं लगा। इस हालत में भी उस व्यक्ति को देखकर उसे कुछ हंसी आई। उसकी एक-एक बात हंसी की थी। वह आदमी स्वयं ही उसके बेंच के सामने आकर रुक गया, और उसे बड़े ध्यान से देखकर बोला—"स्टिल अनिम्पलायेड माइ डियर, अभी तक बेकार हो?"

सन्तोषकुमार ने उसे बड़े प्रेम से अपने बगल में बैठाया, मानो वह कोई बहुत घनिष्ट मित्र हो। उस व्यक्ति ने बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये कहा—"देखो मुझे देखो, हर इन्टरव्यू में जाता हूं, पर नौकरी नहीं लगी। इसलिये दिल मत हारो।" कहकर उसे जैसे एकाएक कुछ स्मरण हो आया, बोला—"क्या बात है इधर के किसी इन्टरव्यू में मैंने तुम्हें नहीं देखा? दिल हारने से काम थोड़े ही चलेगा। मुझे देखो माई ब्वाय।"

सन्तोषकुमार ने अपनी सारी आपबीती कह सुनाई। वह मानो इसीलिए भरा हुआ बैठा था कि कोई मिले तो उससे अपनी दास्तान सुनावे। आज उसने डाक्टर शकुन्तला देवी के सम्बन्ध में जिस बात का आविष्कार किया था, उसने वह भी बता दिया। बोला—"अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूं।"

उस व्यक्ति ने कहा—"तुम्हारी बातों को सुनकर मुझे कुछ

तसल्ली मिली, बेकार हूं, पर ऐसे-ऐसे दुष्टों से साबका नहीं पड़ा।" कहकर उसने जेब से एक सिगरेट की डिबिया निकाली, और सन्तोषकुमार की तरफ उसे करते हुए और जब उसने मना कर दिया तो खुद ही एक सिगरेट सुलगाकर पीते हुए बोला—"मेरी बात और है, मेरे दो मकान हैं। न बीवी न बच्चे, एक मकान में रहता हूं, दूसरे से कुछ किराया आ जाता है, गुजारा हो रहा है पर तुम्हारी समस्या तो बड़ी विकट मालूम देती है। बस एक बात कर सकता हूं माई डियर, वह यह कि तुम आकर मेरे साथ रहो, और फिर दोनों एक साथ नौकरी ढूंढेंगे। जब मिलकर बैठेंगे, समझे?"

सन्तोषकुमार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, बोला—"प्रत्येक को अपनी-अपनी समस्या सुलझानी पड़ती है, इसमें दूसरे को घसीटना गलत है।"

फिर भी उस व्यक्ति ने सन्तोषकुमार को अपना पता दे दिया और कहा—"अपना ही घर है जब चाहे आओ।"

कहकर वह व्यक्ति जैसे अप्रत्याशित रूप से आया था उसी प्रकार अप्रत्याशित रूप से चला गया। जाते समय बोला—"भाई माफ करना एक इन्टरव्यू है, उसके लिए एक साहब से सार्टिफिकेट लेने जा रहा हूं। पता तो तुम्हारे पास ही रहा, जब चाहे मिलना।"

जब वह व्यक्ति चला गया, तो सन्तोषकुमार को सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह हुआ कि इस व्यक्ति ने एक बार भी उस प्रकार की कथित व्यावहारिक बातें नहीं कहीं जैसा उसके पिता तथा अन्य लोग कहने के अभ्यस्त थे। उसने एक बार भी यह नहीं कहा कि अपनी नौकरी पर बने रहो। इसलिए उसके मन में उस व्यक्ति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई।

बड़ी देर तक वह पार्क में बैठा रहा, फिर जब संध्या हो

गई तब वह धीरे-धीरे घर की ओर चला। वहां उसे एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि उसके पिता उसके भावी श्वसुर के साथ कल शाम तक पहुंच रहे हैं। वह इस बात के लिये तैयार रहे कि उन्हीं के साथ घर वापस चले। उसने इस पत्र को तीन-चार बार पढ़ा, पत्र में कहीं कोई दो अर्थ की गुंजाइश नहीं थी। उसने फौरन अपनी चीजों को समेटना तथा बिस्तर बांधना शुरू किया। फिर मकानवाले को कहकर और उसके सब पैसे चुकता कर वह एक तांगे पर सारा सामान रखकर उस व्यक्ति के यहां पहुंच गया जो उसे पार्क में मिला था। उस व्यक्ति ने बड़े तपाक से उसका स्वागत किया और बोला—"माइ डियर इतने जल्दी आओगे यह मालूम नहीं था।"

सन्तोषकुमार ने कहा—"मित्र कुछ ऐसी ही बात हो गई।"

इक्कीस

मुनीमजी तथा उनके भावी समधी कार पर यथासमय बनारस में सन्तोषकुमार जहां रहता था वहां पहुंचे। पर वहां से तो चिड़िया उड़ चुकी थी। मकानवाला कार देखकर बगल से आ गया, पर दोनों की जिरह के उत्तर में वह इस सम्बन्ध में कुछ कह न सका कि सन्तोषकुमार कहां चला गया है। यह सुनकर कि कल ही सन्तोषकुमार चला गया मुनीमजी की हालत ऐसी हुई जैसे तिमंजिले से गिरने पर टाइपराइटर की होती हो। उन्हें बड़ा क्रोध आया कि इतने परिश्रम से वे डेढ़ महीने से इस धन कुबेर को टाल रहे हैं, और अब यह लड़का खिसक गया। पर अपने भावी समधी के सामने तो मुंह रखना ही था, इसलिए बोले—"यह लड़का बचपन से ही इस तरह का पागल रहा है। बस उसे एक पढ़ने की धुन रहती है। शादी के नाम से तो ऐसा तिनगता है कि कुछ कहने का नहीं।"

मकानवाले ने बात का समर्थन करते हुए कहा—"जी हां, मैं तो यही देखता था कि शाम को थोड़ी देर के लिए घर में

फुर्सत मिलती थी, तो उस वक्त भी कुछ-न-कुछ लिखा-पढ़ी ही किया करते थे। रोज़ चार-छः चिट्ठी भी लिखते थे और आदमी इतने अच्छे हैं कि बिलकुल गऊ। न माधो का लेना न ऊधो का देना।"

मुनीमजी खुश होते हुए बोले—"हां हां उसके मित्र भी बड़े-बड़े हैं जिनमें कई तो साहब हैं। जो एक बार मिल लेता था, वह उसका मित्र हो जाता था।"

पर उस धनी व्यक्ति ने इन बातों को विशेष पसन्द नहीं किया, मुनीमजी से कहा—"चलिये आप मेरे घर में रहिये, वहीं से सन्तोष बाबू की तलाश की जाय।"

बाध्य होकर मुनीमजी ने ऐसा ही किया, पर दो-तीन दिनों तक पता लगाने पर भी जब सन्तोषकुमार का कोई सुराग नहीं मिला, तो वे अत्यन्त निराश तथा दुखी होकर अपने कस्बे में लौट गये। उन्हें इस समय दुःख और भी अधिक इसलिए हो रहा था कि इन दो-तीन दिनों में वे अपने संभव समधी रामबाबू का ऐश्वर्य देख चुके थे। इसके अतिरिक्त उनको न मालूम क्यों यह भी सन्देह हो रहा था कि रामबाबू अपनी भानजी के लिए दूसरे वर की तजवीज कर रहे हैं। वे इस बीच में अपने 'साहब' याने सेठ अमोलकचन्द से भी मिले थे, पर वहां यही पता लगा था कि सन्तोषकुमार बहुत पहले ही उनकी नौकरी छोड़ चुका है। मुनीमजी को जैसी आशा थी कि 'साहब' उनसे बहुत प्रेम से मिलेंगे, वह पूरी नहीं हुई। इसके विपरीत वे उनके साथ कुछ रुखाई के साथ ही पेश आये। उन्होंने ऐसा दिखलाया कि उन्हें सन्तोषकुमार में कोई दिलचस्पी नहीं है। केवल यही नहीं सेठजी ने मुनीमजी से यह भी कहा कि सन्तोषकुमार विश्वासघातक है। उन्होंने उन्हें रामजियावनवाला सारा किस्सा भी बताया। इन सारी बातों से खिन्न होकर वे घर पहुंचे, और बीमार पड़ गये।



बाईस

सन्तोषकुमार उस दिन तो तैश में आकर डाक्टर शकुन्तला के स्पष्ट निर्देश के विरुद्ध दफ्तर छोड़कर चला गया था, पर अगले दिन यथासमय वह अपने काम पर पहुंचा। वहां अपनी कुर्सी पर कुछ बैठने के बाद ही उसे यह ज्ञात हो गया कि उसकी चारों तरफ की आबोहवा कुछ गुमसुम हो रही है। वह बैठकर अपना काम करने लगा, पर हर घड़ी उसे यह आशंका हो रही थी कि डाक्टर शकुन्तला उसे बुलाएगी और उससे जवाब-तलब करेगी कि कल वह उनके स्पष्ट निर्देश के विरुद्ध क्यों चला गया था। रात भर और सोचकर भी वह किसी निश्चय पर नहीं पहुंच पाया था। मध्यवित्त वर्ग के लिए आतंक की सबसे बड़ी स्थिति बेकारी में फंसने के लिए वह अपने को तैयार नहीं कर पा रहा था। इसी कारण वह आज दफ्तर में आया था। उसने यों अपने विवेक के साथ समझौता कर लिया था कि नौकरी छोड़ना तो हर समय अपने हाथ में रहेगा। फिर अच्छी तरह सोच-समझ कर तभी कदम क्यों न उठावे। शिब्बनलाल जिसके घर

में वह ठहरा था, उसकी बात और थी, उसका निजी मकान था, साथ-ही-साथ किराने से कुछ बंधी हुई आमदनी थी, पर उसकी बात और थी।

उसका भी निजी घर था, पर उसे इस बात का स्वाद मिल चुका था कि बेकार होकर घर जाने पर उसकी कैसी कदर होगी। उसे इसका बहुत कड़वा अनुभव था। एक तो बेकारी और तिस पर माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध उसने कथित धनीपुत्री से शादी करने से इन्कार किया था। नहीं अब तो घर लौटने का कोई प्रश्न नहीं था। उसने रात भर सोचकर यह भी अनुमान कर लिया था कि जब उसके पिता उसे अपने निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पायेंगे तो वे अवश्य सेठ अमोलकचन्द से मिलेंगे। इसके फलस्वरूप उनमें जो बातें होंगी, और उसके पिता को जो निराशा होगी, इसका भी उसने अनुमान कर लिया था।

इसलिए घर लौटने की बात तो अकल्पनीय थी। ऐसी हालत में यदि वह नौकरी छोड़ देता, तो आफत और भी अधिक हो जाती। आखिर उसे जीना तो है ही। अवश्य शिब्बनलाल ने उसे यह कहा था—"दोस्त परवाह मत करो, अगर एक रोटी मेरे लिए है तो उसमें से आधी तुम्हारे लिए है।"

पर यह सब कहने की बातें हैं। शिब्बनलाल ने जिस तपाक के निमंत्रण दिया, आने पर उस तपाक से उसका स्वागत नहीं किया था। बेचारा खुद ही बेकार था, वह कैसे किसी का स्वागत करता। यदि उसने ढंग से स्वागत नहीं किया, तो इसके लिए वह उसे दोष नहीं दे सकता। इन्हीं सारी बातों को सोचकर उसने तय किया था कि उसे किसी पर भारस्वरूप नहीं होना है। इसी कारण वह सब कुछ जानते हुए भी डाक्टर शकुन्तला की नौकरी पर आया था। यही सोचा कि जब तक यही चले।

फुर्सत मिलते ही वह दूसरी नौकरी की तलाश करेगा, अथवा ट्यूशन आदि ढूंढ़ेगा।

पर उसके मन में डाक्टर शकुन्तला का डर बना हुआ था क्योंकि डाक्टर शकुन्तला अनुशासन की बड़ी पक्की थी। यह तो उसने इन्हीं थोड़े से दिनों में देख लिया था। पर इस समय काम की भीड़ बहुत थी। रोगिणियों का, यद्यपि सन्तोषकुमार उन्हें अब रोगिणी नहीं समझता था, एक तांता-सा लगा हुआ था। कई तो अभी फीस देकर प्रतीक्षा करने के कमरे में बैठकर इस बात का बाट जोह रही थी कि उनकी बारी आवे। भीड़ छंटने से पहले उसके बुलाये जाने की संभावना कम थी। वह यंत्रवत् अपना काम करता जा रहा था। पर अब वह प्रत्येक रोगिणी को सन्देह की दृष्टि से देखता था। उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि देश में इतना पाप है। डाक्टर शकुन्तला की तरह कई होंगी, और वह यह अनुमान कर सकता था कि उन सबके यहां यदि इतनी नहीं, तो कुछ न-कुछ भीड़ अवश्य होगी। और मजे की बात तो यह है कि सारी स्त्रियां अपने-अपने समाज में बड़ी शरीफ समझी जाती होंगी। उसे सबसे अधिक उन लड़कियों पर तरस आ रहा था, जो देखने से छात्रायें मालूम होती थी। सेठजी के यहां उसने चोरबाजारी का रूप देख लिया था, और यहां आकर समाज का यह रूप देखा। भीतर-ही-भीतर उसका मन बड़ी अजीब उधेड़ बुन में पड़ गया। पर वह अपना काम करता गया। पेट, पेट, पेट जो पालना था। हाय, इस पेट के लिए लोगों को क्या करना पड़ता था।

जिस समय एक बज गया, उस समय भीड़ एकदम कम हो गई। अभी दो-तीन स्त्रियां भीतर के कमरे में थीं, शायद वे इस काबिल नही थीं कि पैदल घर लौट सकें, इस कारण या तो वे कुछ देर तक बैठकर जानेवाली थीं या उनके लिये तांगा

आदि बुलाया गया था। जो कुछ भी हो डाक्टर शकुन्तला का काम खतम हो चुका था, और वह अन्दर के कन्सलटेशन के कमरे में जाकर अपनी बैठक में बैठी थीं। अब किसी भी समय उसका बुलावा आ सकता था। ऐसा वह सोच ही रहा था कि सचमुच उसका बुलावा आ गया।

वह उठकर उस कमरे में पहुंचा। डाक्टर शकुन्तला आज उसे किसी और रूप में दिखाई दे रही थीं। अब से पहले जब भी उसने उसको देखा था, तो वह उसे केवल एक लेडी डाक्टर समझता था, पर आज वह उसका असली रूप जान चुका था। इस कारण उसे ऐसा मालूम दिया जैसे उसके चेहरे पर हिंस्र पशुओं की तरह कोई बात थी। यह सेठजी ही का जैसे एक दूसरा रूप था। एक क्षण के लिए उसे ऐसा भ्रम हुआ जैसे वह सेठजी के सामने ही खड़ा हो। डाक्टर शकुन्तला ने उसे बैठ जाने के लिये इशारा किया। फिर बोली—"आपको कल कोई एकाएक काम पड़ गया था क्या?" कहकर उसने दूसरी तरफ आंख फेर ली।

सन्तोषकुमार ने समझा कि उसको असली बात न बताकर झूठा बहाना करने का मौका दिया जा रहा है। एक क्षण तक वह हिचकिचाया, फिर उसने न मालूम क्या सोचकर सारी बात ज्यों-ज्यों घटित हुई थी, सब बता गया।

सुनकर डाक्टर शकुन्तला गम्भीर हो गई। बोली—"तो आप अपने मन में मुझे बहुत दुश्चरित्रा समझ रहे होंगे?"

सन्तोषकुमार ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसने उत्तर में सिर नीचा कर लिया, और अपने कुर्ते के बटनों को हाथ से टोने लगा। वह कहता तो क्या कहता।

डाक्टर शकुन्तला बोलीं—"यदि आप ऐसा समझते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, जो स्त्रियां हमसे उपकृत होकर

आज समाज में शरीफ बनी हुई हैं, वे भी हमें बुरी औरत समझती हैं, पर मैं ही जानती हूं कि समाज का कितना कल्याण कर रही हूं। आप अवश्य ही इस बात को सुनकर चौंक पड़ेंगे।"

सचमुच सन्तोषकुमार इस बात को सुनकर चौंक पड़ा, क्योंकि ये बातें सेठजी की बातों से मिलती-जुलती थीं। वह चुप रहा और डाक्टर शकुन्तला बोलती गई—"मैं कोई सैद्धान्तिक बात नहीं करूंगी, यद्यपि मैं उस किस्म की बात भी कर सकती हूं। मैं तो केवल आपके सामने तथ्य और आंकड़े दूंगी। आपके समाज के स्तम्भगण क्या कहते हैं मुझे मालूम है, पर यह एक तथ्य है कि आज दिन बिलकुल शरीफ रूप से विवाहित तथा शरीफ स्त्रियों की भी ऐसी सन्तानें होती हैं, जिन्हें वे नहीं चाहते। प्रत्येक सन्तान की उत्पत्ति के साथ रहन-सहन के मानदंड में कमी आती है यह तो एक तथ्य है, इसलिये कई बार मेरे यहां शरीफ स्त्रियां अपने पति को साथ लेकर आती हैं कि अवांछित गर्भ से मैं उनका छुटकारा कराऊं।"

सन्तोषकुमार एकाएक बीच में बोल उठा—"क्या पता वे उनके पति ही हैं, संभव है प्रेमिक ही पति बनकर आता हो।"

"हां ऐसा कई बार होता है, पर कहते हैं न, दाई से पेट छिपाया नहीं जाता। पति का व्यवहार और होता है, और अवैध प्रेमिक का व्यवहार और। मैं फौरन ऐसे लोगों को ताड़ लेती हूं। संभव है एक-आध गलती हो जाती हो, पर बहुत कम गलती होती होगी।"

"आप फीस तो दोनों तरह के लोगों से बराबर लेती होंगी?"

"हां यह बात तो सही है, पर मैं यहां फीस की बात नहीं कर रही हूं। फीस तो वही ६०+५=६५ रहती है, पर मैं समझ जाती हूं कि क्या मामला है। ऐसी हालतों में जहां पति-पत्नी

की राय से मैं काम करती हूं, वहां तो आप यह नहीं कह सकते कि मैं व्यभिचार को प्रोत्साहन देती हूं। हमारे यहां आम लोगों में यहां तक कि आम पढ़े-लिखे लोगों में भी जन्म-निरोध का ज्ञान नहीं है, इस कारण हमारे पास लोग आते हैं। यदि राष्ट्र की तरफ से जन्म निरोध के ज्ञान का प्रचार हो, तो ऐसा काम न करना पड़े क्योंकि उसके लिये गुंजाइश नहीं रहेगी।"

सन्तोषकुमार बोला—"फिर भी कानून तो टूटता ही है, और यह तो आप जानती ही होंगी कि जन्म-निरोध और बात है, और यह काम और। जन्म-निरोध में प्राण-संचार को रोका जाता है पर यहां तो प्राण-संचार होने पर मारा जाता है। मैंने इस पहलू पर पढ़ा है, इस कारण आप से तर्क कर रहा हूं।"

डाक्टर शकुन्तला कुछ जैसे संकुचित हो गई, बोली—"हां यह बात तो ठीक है, और इसमें सन्देह नहीं कि प्राण संचार को रोकना हजार गुना अच्छा होता, पर जब ऐसा नहीं हुआ तो ऐसा करना ही पड़ता है। जिन सन्तानों के सम्बन्ध में यह पता है कि उन्हें न तो ढंग का खाना मिलेगा, न शिक्षा मिलेगी, पहले मां-बाप के लिये और बाद को समाज के लिये और अपने लिये दुखकर होंगी, उनका गर्भ में मर जाना ही अच्छा है। इसमें भावुकता से काम लेने से बात बनेगी नहीं।"

डाक्टर शकुन्तला कुछ देर तक ठहरी फिर बोलीं—"अब दूसरी तरह की रोगिणियों को लीजिये। कुमारी या विधवा अवस्था में जो स्त्रियां गर्भ धारण कर लेती हैं, वे भी मेरी सहायता प्राप्त करने के लिये आती हैं। यदि मैं या मेरी तरह के लोग उनकी सहायता न करें, तो आपका कानून और आपका धर्म तो शायद अक्षुण्ण रहेगा, पर यह जरा सोचिये कि उसके जीवन का तथा शायद उसके साथ कई और लोगों के जीवन का क्या हाल होगा। आपको मालूम न होगा कि ऐसी कई स्त्रियां

जिनको मेरे ऐसे लोगों की सहायता समय पर प्राप्त नहीं होती, सीधे दालमंडी पहुंच जाती हैं। दालमंडी में पूछिये कितनी स्त्रियां इसी प्रकार की सहायता न मिलने के कारण ही वहां पहुंची हैं।"

सन्तोषकुमार के लिये ये बातें इतनी भयंकर थीं कि वह सुनकर दहल उठा। डाक्टर शकुन्तला जो कुछ कह रही थी, कम-से-कम जो तथ्य दे रही थी, वे सही थे। पर साथ ही उसका मन गवाही नहीं देता था कि यह काम अच्छा है। धर्म और कानून बिलकुल गलत है इस बात को वह मानने के लिये तैयार नहीं था। डाक्टर शकुन्तला भी समझ गई कि आज के लिये काफी हो चुका। उसे सन्तोषकुमार से कोई मोह नहीं था। वह भली भांति जानती थी कि वह जायेगा तो उसकी जगह दस आयेंगे। फिर भी उसने अपना इतना समय उस पर खपाया था, इसका कारण यह था कि यद्यपि उसके पास धन बहुत हो गया था, पर वह एक तरह से अस्पृश्या समझी जाती थी, और उसे बराबर इस बात की इच्छा बनी रहती थी कि लोग उसके असली मतलब को समझें, और कम-से-कम उसे उतनी ही शरीफ समझें जितना अन्य धन्धेवाले समझे जाते हैं।

डाक्टर शकुन्तला ने आगे कुछ नहीं कहा, और यह कहकर उठकर चली गई कि अब आप मेरे काम को अच्छी तरह समझ गये होंगे। सन्तोषकुमार समझा तो कुछ था नहीं, पर इतना सन्देह में अवश्य पड़ गया था कि शायद इस काम में कोई भलाई हो।

उसने अभी नौकरी न छोड़ने का तथा घटनाओं की प्रतीक्षा करने का इरादा कर लिया। अब वह कुछ-कुछ अपने मन को इस प्रकार भी समझाने लगा था कि यदि कुछ पाप होता है तो डाक्टर शकुन्तला को ही होगा। वह करीब-करीब आंख बन्द किये हुए अपना काम करने लगा। न तो डाक्टर शकुन्तला ने ही उसे फिर बुलाया, और न वही उसके पास गया।

तेईस

साथी रूप में शिव्बनलाल सन्तोषकुमार को बड़ा अद्भुत प्रतीत हुआ। उसे उसका जीवन-दर्शन कुछ समझ में नहीं आया। यद्यपि उसका जीवन कहने लायक कुछ भी नहीं था (और यही सन्तोषकुमार का भी हाल था) फिर भी वह हर समय हंसता-हंसता रहता था। पर रहते-रहते सन्तोषकुमार को पता लगा कि उसकी यह हंसी केवल उसके अन्दर धुधुआनेवाले रोदन का एक मोहक आच्छादन मात्र है। कई बार तो वह अवसाद की अवस्था में आत्महत्या तक की बात कर जाता था। अवश्य उसका यह रुख स्थायी नहीं होता था।

वह अक्सर रात को बहुत देर में लौटता था, और सन्तोषकुमार को एक-आध बार यह भी सन्देह हुआ कि जिस समय वह इस प्रकार अधिक रात को लौटता है, तो वह पीये हुए होता है। एक दिन उसे इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया। अगले दिन जब शिव्बनलाल देर से सोकर उठा, तो सन्तोषकुमार ने उससे पूछा—"क्या इधर तुम पीने भी लगे हो?"

शिब्बनलाल ने मुंह बनाकर अप्रसन्न होते हुए कहा—"इसे पीना थोड़े ही कहते हैं, कभी-कभी गम गलत करता हूं।" कहकर उसने जैसे कुछ सोचकर पूछा—"तुम नहीं पीते ?"

"नहीं, मैं तो नहीं पीता।"

"तो तुम निरे गधे हो।"

सन्तोषकुमार ने इसके उत्तर में मुस्करा दिया। शायद इससे शिब्बनलाल कुछ चिढ़ गया। बोला—"मैं तो तुम्हारे ऐसे लोगों को कायर समझता हूं। यदि तुम्हारे पास धन, दौलत, जायदाद होती, तो यह समझ में आ सकता था कि तुम ईश्वर से डरते हो, इत्यादि इत्यादि। पर जब तुम्हें ईश्वर ने कहीं का नहीं रक्खा, और दर-दर की ठोकरें खिलवा रहा है, तो फिर तुम क्यों डरते हो ? मैं तो साफ कहता हूं, जो कुछ भी मुझसे लिये बनता है, उसे मैं लेता हूं। तुम तो शायद सुनकर बेहोश हो जाओगे कि मैं कभी-कभी दालमंडी भी चला जाया करता हूं।" कहकर वह कड़वी हंसी हंसा मानो इस हंसी में ही वह अपने हृदय का सारा क्लेश उसी प्रकार से उड़ेल देना चाहता हो, जिस प्रकार से सांप डसने में अपना विष उड़ेल देता है। आगे वह कुछ नहीं बोला।

सन्तोषकुमार ने बातचीत शुरू तो इस इरादे से किया था कि वह शिब्बनलाल से शराब पीने के विषय पर तर्क करेगा, पर उसकी बातें सुनकर उसके मन में एक शैथिल्य सा आ गया, और वह चुप रहा। पर शिब्बनलाल चुप रहनेवाला नहीं था। वह इस समय जो चुप था, यह चुप्पी मानो उसी प्रकार की थी कि वह लड़ाई से पहले अपने दांतों तथा नखों को तेज करता हो। बोला—"मैं जानता हूं कि तुम भी एक दिन मेरे रास्ते पर आओगे, शायद मुझसे भी बुरे बन जाओ। न मालूम तुम्हारी किस्मत कितनी अच्छी है कि तुम्हें एक के बाद एक नौकरी मिली

जा रही है। अगर कुछ दिन नौकरी न मिले, तब तुम समझोगे असल में यह दुनिया कैसी है। मैं भी जब छात्र था तो नैतिक मूल्य और काहे-काहे पर बातचीत किया करता था, पर अब तो देखता हूं कि नैतिक मूल्य सिर्फ किताबों में है। योग्यता कोई चीज़ नहीं है, सिफारिश ही सबसे बड़ी बात है। देखो न, मुझे नौकरी नहीं मिली। शादी के बाजार में चलो, वहां आदमी को नहीं देखा जाता, उसके रुपये और मकान को देखा जाता है। तुम्हें ताज्जुब होगा कि मेरी शादी के भी कई पैगाम आये, पर मैं जानता था कि ये पैगाम मेरे लिये नहीं हैं, मेरे अन्दर जो मकानवाला है उसी के लिये हैं। अगर मैं केवल मैं होता, याने चिर-बेकार शिब्बनलाल, तो मेरे लिये शादी के कोई सन्देश नहीं आते। इसीलिये मैंने शादी नहीं की। यह समाज के प्रति मेरा बदला है। मैं जब तक मरूंगा, इन मकानों को खा जाऊंगा" कहकर वह सन्तोषकुमार के कान के पास मुंह लाकर बोला—"किसी से कहना मत, मैंने अपने दूसरे मकान को बहुत पहले ही गिरवी रख दिया है।"

इसी प्रकार से शिब्बलनलाल बहुत कुछ बोल गया। सन्तोष-कुमार ने जब देखा कि वह बोल चुका है, तो बोला—"यह बात गलत है। तुमको बहुत कड़वे तजर्बे हुए, इसी कारण तुम ऐसा कह रहे हो। मेरे पास तो न मकान है न दुकान है, फिर भी मेरे लिये बराबर शादी के संदेश आये हैं, और अब सुनता हूं कि किसी धनी के यहां से संदेश आया है। तुम जानते हो उसी कारण तो मैं यहां भाग आया।"

एकाएक शिब्बनलाल को कुछ याद आया। घड़ी की तरफ देखता हुआ बोला—"बात-बात में बहुत समय निकल गया। आज मेरा एक इंटरव्यू है। अभी रवाना होना है।"

सन्तोषकुमार को भी दफ्तर जाना था। वह भी उठकर अपने काम में लग गया।

इसी प्रकार इस घर में करीब दो सप्ताह निकल गये। संतोषकुमार किसी नतीजे पर बिना पहुंचे ही घिसटता चला जा रहा था। अब वह मानसिक रूप से कुछ-कुछ उदासीन होने लगा था। दिन-रात शिब्बन लाल की बातें सुनकर और डाक्टर शकुन्तला के काम देख कर उसके मन का दर्पण अपनी चमक खो चुका था। अब उसमें चीजें आसानी से प्रतिफलित नहीं होती थीं। अब उसने अपने को भाग्य का एक शिकार मान-सा लिया था। कभी-कभी सोचा करता कि अर्जियां लिखे या ट्य़ूशन ढूंढ़े, पर इस इच्छा को कार्यरूप में परिणत करने की नौबत नहीं आती थी।

पहले-पहल उसे शिब्बनलाल की बातों में जो रस आता था, अब वह रस नहीं रह गया था। वह अब उसकी आंखों में एक दिलचस्प व्यक्ति होने के बजाय एक अभागा मात्र प्रतीत होता था, उसकी तरह एक अभागा या शायद उससे कुछ अधिक। जब वह रात को शराब पीकर आता था, तो संतोषकुमार को उस पर जितनी घृणा होती थी, उससे शायद कहीं अधिक अपने ऊपर ग्लानि होती थी कि उसे ऐसे व्यक्ति का यदि पूर्णरूप से नहीं तो आंशिक रूप से आश्रित रहना पड़ रहा था। वह चाहता तो अन्यत्र रहने की जगह शायद मिल जाती, पर उसने इसकी चेष्टा ही नहीं की। अब तो वह यंत्रचालित की तरह डाक्टर शकुन्तला के यहां काम करने के बजाय और कुछ नहीं करता था। स्वयंपाक भी बहुत कुछ छूट चुका था। अब अक्सर होटलों में ही खाना खाता था।

एक दिन की बात है कि संतोषकुमार तो जग चुका था, और शिब्बनलाल अभी खर्राटे भर रहा था कि इतने में दरवाजे पर

भड़भड़ाहट होने लगी। यहां इतने सवेरे तो कोई आता नहीं था, और सन्तोषकुमार ने जाकर दरवाजा खोल दिया। इसके बाद घटनायें इतनी द्रुतगति से हुई कि उसे पता नहीं लगा कि क्या हुआ और कैसे हुआ। एक पुलिस कर्मचारी ने उससे पूछा—"तुम्हारा ही नाम संतोषकुमार है ?"

उसने कहा—"हां"। बस इतने ही पर फौरन उसके हाथों में हथकड़ी डाल दी गई, और चमड़े से मढ़ी हुई एक रस्सी उसकी गर्दन पर से जनेऊ की तरह डाल दी गई। जब पहला धक्का संभल गया, तब उसने देखा कि वह गिरफ्तार है, और पुलिस-वाले भीतर घुसकर शिब्बनलाल से पूछताछ कर रहे हैं। शिब्बन लाल भी नींद में पकड़ लिया गया था, पर उसके विरुद्ध शायद वारण्ट नहीं था, इसलिये उसे हथकड़ी नहीं डाली गई थी। पर पुलिसवाले उसे चारों तरफ से घेरे हुए थे। पुलिस का वह कर्मचारी जिसने सन्तोषकुमार को गिरफ्तार किया था, वह कह रहा था "आपके यहां का नाम तो शिब्बनलाल है, पर असली नाम क्या है ?

शिब्बनलाल बड़े जोरों से प्रतिवाद करता हुआ बोला—"मेरा तो साहब एक ही नाम है। यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन से लेकर सभी जगह मेरा यही नाम है।"

"आप रामजियावन तो नहीं हैं ?"

शिब्बनलाल ने तैश में आकर कहा—"मैं सिवाय शिब्बनलाल के कोई भी नहीं हूं। इस तरह शरीफ आदमी के घर पर आकर उसे बेइज्जत करने के क्या माने हैं ?"

पुलिस कर्मचारी बोला—"मैं बेइज्जत नहीं कर रहा हूं, मैं तो रामजियावन को खोज रहा हूं। आप रामजियावन नहीं हैं, इसका आपके पास क्या प्रमाण है ?"

शिब्बनलाल बोला—"वाह साहब यह अच्छी रही। मैं कहता हूं, यही प्रमाण है।"

पुलिस कर्मचारी ने तेजी के साथ कहा—"तो उस हालत में आपको मेरे साथ थाने में चलना पड़ेगा।" फिर कुछ सोचकर बोला—"आपके पास एन्ट्रेंस पास होने का सार्टीफिकेट तो होगा ?"

"क्यों नहीं होगा ? मेरे पास एन्ट्रेंस का है, बी० ए० का है, बी० टी० का है।"

"सबमें आपका नाम शिब्बनलाल है ?"

"जी हां, सैकड़ों दफे कह चुका, इसके अलावा मेरे जायदाद-सम्बन्धी कागजात भी हैं जिनमें मेरा नाम लिखा है।"

"तो साबित हो गया कि आप रामजियावन नहीं हैं, आपका असली नाम शिब्बनलाल है। पर इस बात को आप कैसे साबित करेंगे कि आप कभी-कभी सन्तोषकुमार के साथ गांवों में घूमते समय अपना नाम रामजियावन नहीं बताते।"

अबकी बार शिब्बनलाल बहुत बिगड़ गया, बोला—"अरे यह लफंगा, मैं तो इसे अच्छी तरह जानता भी नहीं हूं। मुझसे बोला कहीं रहने की जगह नहीं है, तो मैंने इसे किराये पर एक रूम दे दिया। मुझे नहीं मालूम था कि यह कोई बदमाश है। मुझे मालूम होता तो मैं इसे भूल कर भी नहीं देखता।"

"तो आपकी इससे जान-पहिचान कहां हुई ?"

शिब्बनलाल ने सारी बात बता दी। फिर बोला—"मैंने तो इसे शरीफ आदमी समझकर आश्रय दिया था, मुझे क्या मालूम था कि यह कोई बदमाश है।

पुलिस कर्मचारी ने कहा—"बदमाश नहीं, कम्युनिस्ट।"

अब जैसे शिब्बनलाल पर सारी बातें खुल गईं। बोला—"गढ़-गढ़ कर किस्से सुनाता था, अब असली बात का पता लगा।

तभी मुझसे शराब पीने पर लड़ता था। दालमंडी जाने से रोकता था। मुझे इसकी बातों से पहले ही समझ जाना चाहिये था कि यह खतरनाक आदमी है।"

सन्तोषकुमार को यह आश्चर्य-पर-आश्चर्य हो रहा था कि किस प्रकार से शिव्वनलाल एक के बाद एक झूठ बोलता जा रहा था। वह कितना जल्दी बदल गया। कल शाम तक मित्रता की बातें करता था मानो अभिन्नहृदय हो, और आज एकदम कैसी बातें कर रहा है। पर उसे इस समय इन बातों से कहीं अधिक अपनी फिक्र हो रही थी। उसे स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि वह कम्युनिस्ट रूप में गिरफ्तार किया जायगा। उसने एक बार सोचा कि प्रतिवाद करे कि वह कम्युनिस्ट नहीं है, पर उसके मुंह से कोई बात नहीं निकली। गिरफ्तार होने पर उसके अन्दर जो चांचल्य पैदा हुआ था, वह धीरे-धीरे दब गया। अब वह निष्क्रिय रूप से घटनाओं की प्रतीक्षा करना चाहता था। उसने एक भी शब्द नहीं कहा, और गिरफ्तार होकर पुलिस की टुकड़ी के साथ थाने के लिये रवाना हो गया। इस बीच में पुलिसवालों ने उसके सारे सामान की तलाशी ले ली थी, पर उन्हें कोई आपत्तिजनक वस्तु नहीं मिली थी।

चौबीस

यद्यपि सन्तोषकुमार ने गिरफ्तारी के समय बिलकुल शान्त भाव धारण किया था, फिर भी जब वह जेल की कोठरी में पहुंच गया, तो वहां की एकान्तता से उसकी घबड़ाहट बढ़ने लगी। बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद से उस पर जो विपत्तियां आई थीं, उनसे वह इतना पस्त हो गया था कि अब उसमें जीवनी शक्ति का बहुत कम अंश रह गया था। उसकी तर्क बुद्धि पर जैसे कोई भयंकर चोट लगी थी, और अब उसमें बोध शक्ति का अभाव-सा हो रहा था। जीवन का सबसे बड़ा लक्षण है कि दिमाग जिस चीज को ग्रहण नहीं करना चाहता, उसके विरुद्ध प्रतिरोध किया जाय, पर सन्तोषकुमार में इसी प्रतिरोध शक्ति का नितान्त अभाव हो रहा था। इस गिरफ्तारी के कारण वह और भी भौंचक्का हो गया था।

नित्यप्रति पुलिस का कोई-न-कोई अफसर आता, और उससे ऐसे प्रश्न पूछता जिन्हें वह अच्छी तरह समझ नहीं पाता था। रामजियावन के सम्बन्ध में उससे बहुत-से प्रश्न पूछे गए।

पुलिसवालों ने कुछ फोटो भी लाकर उसे दिखलाए, पर उसे जितने भी फोटो दिखाए गए, उसने सबको ध्यान से देखकर यही कहा कि इनमें से कोई रामजियावन नहीं है। इस पर पुलिसवालों बहुत चक्कर में पड़े, और आपस में कानाफूसी करने लगे कि सेठजी ठीक कहते हैं, यह सारा किस्सा ही मनगढ़न्त मालूम होता है, इसने खुद ही तारों को बदल कर रवाना किया होगा, और यों ही सेठजी को गढ़कर एक किस्सा सुना दिया।

पर काफी दौड़धूप के बाद भी पुलिसवाले उसके विरुद्ध कोई ऐसी बात निकाल नहीं सके जिससे वह फंसाया जा सकता। सेठजी की गुप्त रिपोर्ट के अतिरिक्त उसके विरुद्ध केवल एक ही बात जा रही थी वह यह कि वह रिश्तेदारों से छिप कर फरार की तरह रह रहा था। अवश्य सन्तोषकुमार ने इस संबंध में सारी बात कह सुनाई थी कि कैसे वह शादी के डर से भाग गया था, इत्यादि। पुराने ढर्रे के पुलिसवालों की दृष्टि में शादी से डरना और उससे बचने के लिए भाग खड़ा होना खतरनाक होने का एक तगड़ा प्रमाण था। इस कारण जांच यहीं खतम नहीं हुई। सन्तोषकुमार जेल में सड़ने लगा।

यद्यपि पुलिस ने शिब्बनलाल को गिरफ्तार नहीं किया था, और शिब्बनलाल अपनी तरफ से यह आश्वासन दे चुका था कि उसे जैसा बताया जाएगा, वह सन्तोषकुमार के विरुद्ध उसी प्रकार की गवाही देने को तैयार है, फिर भी पुलिसवालों ने उसे एकदम सन्देह-मुक्त नहीं समझा। चुपके-चुपके उसके विरुद्ध जांच होती रही। उसका अकेला रहना उसके विरुद्ध गया। साथ ही पुलिसवालों ने यह भी पता पा लिया था कि वह पब्लिक सर्विस कमीशन तथा सरकार के विरुद्ध भ्रष्टाचार का अभियोग खुले आम लगाया करता था जो सुनने में उग्र पन्थियों की बातों की तरह लगती थीं। पर ये सारे प्रमाण मिलकर भी न

तो मुकद्दमे के लायक ही थे, और न उसे इन बातों के लिए नज़रबन्द ही किया जा सकता था। उसके विरुद्ध जांच जारी रही। पुलिसवाले न तो सन्तोषकुमार के सम्बन्ध में ही किसी नतीजे पर पहुंच सके, और न उसके मेजबान शिव्वनलाल के बारे में ही कोई परिणाम निकाल सके। दोनों के विरुद्ध चुपके-चुपके जांच होती रही, एक तो जेल में सड़ने लगा और दूसरा बाहर हमेशा की तरह आवारागर्दी करता रहा। सच तो यह है कि उसकी आवारागर्दी में कुछ वृद्धि ही हो गई।

शिव्वनलाल को इस बात का बहुत ही अधिक दुःख था कि पुलिसवाले उस पर भी कुछ शक करते हैं। किसी सती स्त्री को कुलटा समझने पर उसे जितना मनोकष्ट होता होगा, उसे उससे ज्यादा मनोकष्ट था। वह इस फिराक में रहता था कि किसी प्रकार यह प्रमाणित कर दे कि वह खैरख्वाह है। उसे सबसे अधिक इस बात का दुःख था कि उसके सम्बन्ध में यह शक किया गया था कि वही रामजियावन है। वह उस दिन और घड़ी को बहुत कोसता था, जिस दिन सन्तोपकुमार से उसका परिचय हुआ था। चैन से दिन गुज़रते थे। कहां से उसने नाहक में एक बेकार के आदमी को अपने यहां जगह दे दी, और उसी के कारण उस पर यह आपत्ति आई। यद्यपि न तो उसकी तलाशी ली गई थी, और न वह गिरफ्तार हुआ था फिर भी वह समझता था कि उसके घर में से एक आदमी गिरफ्तार हो गया, और उसके घर में पुलिसवाले घुस आए, यह उसके खानदानीपन को ठेस पहुंचानेवाली बात थी।

खुद जाकर अपने इलाके के थानेदार से जिसने सन्तोषकुमार को गिरफ्तार किया था, आंकड़ों और तथ्यों से वह प्रमाणित कर चुका था कि उसने आजतक एक सौ चौबीस जगह पर नौकरी की अर्जियां दी थीं, जिनमें से सेंतालीस जगहों से उसे इन्टरव्यू

के लिए बुलाया गया था। रही सफलता सो उसकी तकदीर खराब है इसका वह क्या करे। थानेदार ने इस बात को सुनकर मुस्कराते हुए कहा था—"इससे तो आपका आवारापन कटता नहीं बल्कि प्रमाणित होता है।" इस पर शिव्बनलाल ने तैश में आकर कहा था—"वाह मैं ४७ बार इन्टरव्यू के लिए बुलाया गया यह कुछ भी नहीं है। बहुत-से ऐसे पड़े हुए हैं जो अर्जी देते-देते बूढ़े हो गए और कभी इन्टरव्यू में बुलाए नहीं गए, और जब उन्हें नौकरी मिली तो सिफारिशों के बूते पर ही मिली।"

थानेदार ने इस पर यह कहा था—"यह भी तो आपके खिलाफ ही जाता है।"

"क्यों?"

"इससे यह सूचित होता है कि आपका कोई सिफारिश करनेवाला ही नहीं है।"

यह बात शिव्बनलाल को लग गई थी, और उसने कहा था—"ऐसी बात तो नहीं है। बड़ों-बड़ों का सर्टिफिकेट मेरे पास मौजूद है, पर मैं ऐसी बातों में विश्वास नहीं करता।"

सच तो यों था कि वह उन सर्टिफिकेटों को हर इन्टरव्यू में दिखलाता था, पर सर्टिफिकेट और बात है, और सिफारिश और बात। सिफारिश में पीछे के दरवाजे से प्रविष्ट कराने की बात होती है, जबकि सर्टिफिकेट पूर्ण रूप से खुला खेल है, इसी कारण उसका काम बनता नहीं था। जो कुछ भी हो शिव्बनलाल इन दिनों बहुत ही दुखी रहती था, और खुले शब्दों में जब तक जिसके-तिसके सामने सन्तोषकुमार को, और सन्तोषकुमार के कारण रामजियावन तथा सब कम्युनिस्टों को गालियां दिया करता था। उसे कुछ ऐसा विश्वास था कि ये गालियां किसी प्रकार से पुलिसवालों के कानों तक पहुंचेगीं, और उसका जो कागज खराब हुआ है, वह सुधरेगा।

पच्चीस

रामबाबू अपनी भानजी सुकुमारी के लिये वर ढूंढ़ते-ढूढ़ते थक गये, लोगों को बहुत प्रलोभन भी दिया, गरीब घरों में गये, पर न मालूम क्या बात हो जाती थी कि यदि बातचीत चली भी तो अन्तिम मुहूर्त में कोई ऐसी बात हो जाती थी, जिससे लड़केवाले एकाएक उस शादी से इनकार कर जाते थे। रामबाबू व्यापार के क्षेत्र में बहुत सफल व्यक्ति थे, और सरकारी अफसरों के अतिरिक्त अन्य किसी के सामने उनमें सिर झुकाने की आदत नहीं थी। इस कारण वे बीच-बीच में बहुत झुंझला जाते थे, और अपनी बहन से कह देते थे—"तुम जानो तुम्हारा काम जाने, मैं तो इस झगड़े से अलग होता हूं।"

कहने को तो वे ऐसा कह देते थे, पर बहन की कातरता को देखकर, केवल यही नहीं, इसमें उनके सम्मान का भी प्रश्न था, वे फिर दौड़ने लगते थे। पर उनकी सारी दौड़-धूप व्यर्थ हो गई। इतने में उन्हें खबर मिली कि सन्तोषकुमार कम्युनिस्ट रूप में जेल में बन्द पड़ा है। सन्तोषकुमार पहले जिस मकान में

रहता था, उसी के मालिक ने आकर रामबाबू को यह खबर दी थी। इस खबर को पाकर रामबाबू की गति सांप-छछून्दर की सी हुई। न तो निगला ही जाता था और न छोड़ते ही बनता था। कम्युनिस्टों से उन्हें अत्यन्त घृणा थी। वे उन्हें मनुष्य योनि से उतरकर समझते थे। उन्हें कई बार अपने कारखानों में इनसे साबका पड़ चुका था, और वे उन्हें उसी प्रकार का समझते थे जैसे प्राचीन काल में लोग यज्ञ में भंग डालनेवाले दैत्यों को समझते थे। बात यह है कि रामबाबू अपने मन में शायद अपने को ऋषि से कम नहीं समझते थे।

पर अजीब परिस्थिति थी। क्या किया जाता। एक यही मुनीमजी शादी के लिये तैयार थे, उनको हाथ से निकल जाने देना उचित नहीं था। उन्होंने सोचा कोई हम किसी तरह अपने को बांध तो रहे नहीं हैं, पर इन लोगों को हाथ में रखने में कोई हर्ज नहीं है। इसी विचार के वशवर्ती होकर उन्होंने फौरन गाड़ी भिजवाकर मुनीमजी को अपने यहां बुलवाया। मुनीमजी बीमार पड़े हुए थे, पर सन्देश पाकर तुरन्त कार में सवार होकर चले आये। दोनों उसी दिन सन्तोषकुमार से जेल में जाकर मिले। सन्तोषकुमार ने सारी परिस्थिति बता दी।

रामबाबू सब कुछ सुनकर बहुत प्रोत्साहित हुए, बोले—"यदि मैं तुमको छुड़ा नहीं पाया तो मेरा नाम रामनाथ नहीं। पुलिसवालों ने क्या समझ रक्खा है कि किसका राज्य है। बेशक खतरनाक लोगों को पकड़ा जाय, पर इस बहाने भले आदमियों को कष्ट देने का कोई कारण नहीं है।"

सन्तोषकुमार को रामबाबू की बातें बहुत पसन्द आईं। मुनीमजी ने सन्तोषकुमार के कान में पहले ही रामबाबू का परिचय बतला दिया था। वे सब बातें बताकर यह कहना नहीं भूले थे कि रामबाबू साहब से दुगनी हैसियत रखते हैं। कहकर

उन्होंने बहुत जोर की आंख मारी थी। सन्तोषकुमार को विवाह की बात बिलकुल पसन्द नहीं थी, पर वह जेल से छूटना चाहता था, इसमें कोई सन्देह नहीं। और वह यह भी समझ रहा था कि उसे छुड़ाना मुनीमजी के वश का नहीं है। इस कारण उसने शादी के सम्बन्ध में न हां कहा और न ना। अदृष्ट के सामने वह पहले ही घुटना टेक चुका था।

रामबाबू और मुनीमजी भेंट करके चले गये। रामबाबू न मालूम जेलर की कौनसी चाभी ऐंठ गये या न मालूम वह केवल रामबाबू के नाम और मोटर आदि से प्रभावित हुआ कि उसी दिन से जेलवालों का उसके प्रति व्यवहार बदल गया। अब सन्तोषकुमार को घंटों पानी और भंगी के लिये चिल्लाना नहीं पड़ता था। उसे अब कोठरी में भी कम रहना पड़ता था। दूसरे कम्युनिस्ट बन्दी उसके प्रति यह रियायत देखकर कुछ चौकन्ने हुए कि कहीं यह मुखबिर तो नहीं होनेवाला है। पर गहराई के साथ गुप्त रूप से पत्र-विनिमय करने के बाद कम्युनिस्ट बन्दी इस नतीजे पर पहुंचे कि न तो इसे कोई जानता है और न यह किसी को जानता है, ऐसी हालत में वह भला क्या गवाही दे सकता है। अवश्य फिर भी कुछ तजर्बेकार बन्दी यही कहते रहे —"यह तो ठीक है कि इसे कुछ नहीं मालूम; पर पुलिसवालों को इसे सर्वज्ञ बनाकर खड़ा कर देते कितनी देर लगती है।"

इस प्रकार यद्यपि जेलवालों की ओर से सन्तोषकुमार के प्रति ढिलाई हुई, पर अपने इर्द-गिर्द के लोगों के सन्देह के कारण वहां का वातावरण उसके लिये और भी दम घोंटनेवाला प्रमाणित हुआ। मुनीमजी रोज किसी-न-किसी बहाने चले आते, और तसल्ली दे जाते थे कि वह छूटने ही वाला है। उन्होंने यह बताया—"जब से तुमसे मिल के गये हैं, तब से रामबाबू दिन-रात एक कर रहे हैं। पहले तो लखनऊ में जाकर मंत्री या

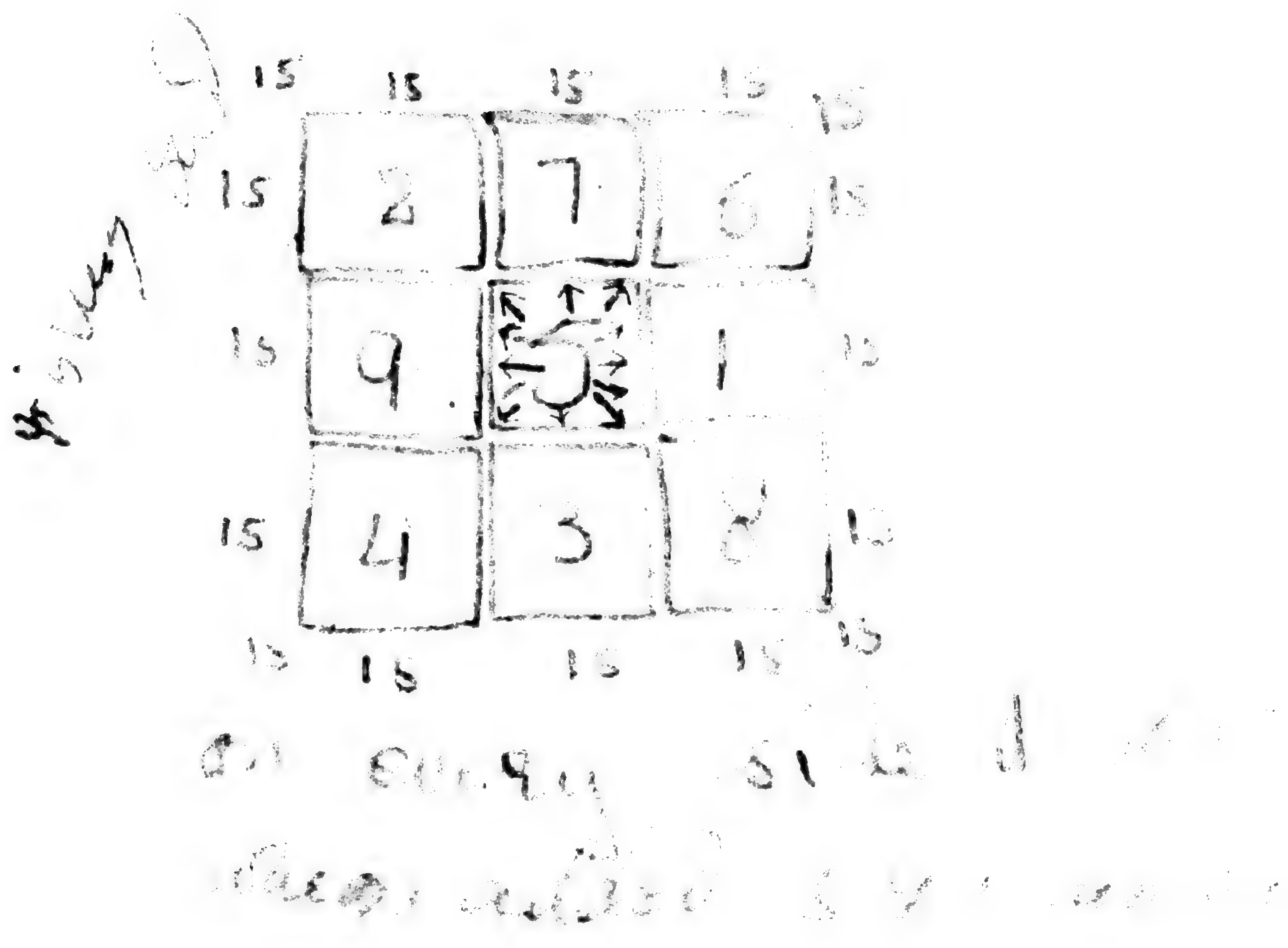
उपमंत्री किसी से मिले। वहां से पता लगा कि यह स्थानीय मामला है और वे हस्तक्षेप नहीं करेंगे। रामबाबू यही चाहते थे। स्थानीय लोगों को तो वे पटाने की आशा रखते हैं" कहकर मुनीमजी ने जेल के बाबू से बचाकर आंख मारी, फिर बोले—"फिर भी जानते हो यह सरकारी गोरखधन्धा है। कागज तैयार होते-होते कई दिन लग जाते हैं, इत्यादि-इत्यादि।"

सन्तोषकुमार मुनीमजी से रामबाबू के सम्बन्ध में जितना ही सुनता था उतना ही उस व्यक्ति के प्रति उसके मन में श्रद्धा बढ़ती जा रही थी। उसे बड़ी खुशी हुई कि उसने अपने मन में जो धारणा बना ली थी कि सभी सेठ, साहूकार, महाजन दुष्ट होते हैं, उस धारणा को बदलने का मौका आया। रामबाबू के विषय में उसके मन में इतना भक्तिभाव उत्पन्न हो चुका था कि उसने अब उनकी भानजी से शादी करने के विचार से समझौता कर लिया था। आखिर शादी ही तो करा रहे हैं, कोई फांसी तो नहीं चढ़ा रहे हैं। उसने ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा तो नहीं की है कि वह आजीवन कुंवारा रहेगा। पिता-माता सभी इस बात से खुश है, फिर वह क्यों इसमें बाधा डाले। दोस्तों को तो उसने देख लिया। शिब्बनलाल को देखा न, पुलिस आते ही उसने कैसे तेवर चढ़ा लिया, और अंड-बंड बकने लगा। रहा नौकरी का मामला सो जब सेठजी ने इसका भी भार ले लिया है तो फिर उसमें आपत्ति ही क्या है। हां श्वसुर का नौकर होना कोई अच्छी बात नहीं मालूम होती, पर वह यह तो चाह नहीं रहा है कि उसकी योग्यता को बिना देखे उसे कोई नौकरी दी जाय। वह तो यही चाहता है कि योग्यता के अनुसार कोई नौकरी दी जाय।

नौकरी की बात सोचते-सोचते उसे एकाएक स्मरण हो आया कि कहीं सेठ रामनाथ उर्फ रामबाबू भी चोरबाजारी हुए तो ?

पर यह विचार उसके मन में अधिक देर तक टिक नहीं सका। उसने यह तय कर लिया कि यदि दुनिया में सभी चोरबाजारी हैं, तो वह उससे बच कैसे सकता है। उसने मन-ही-मन आत्म-समर्पण कर दिया, फिर भी मन में कुछ द्वंद्व तो रह गया ही।

इसी प्रकार की मानसिक अवस्था में वह एक दिन जेल से छूट गया। रामबाबू तथा मुनीमजी फाटक पर ही खड़े थे। सन्तोषकुमार ने दोनों को प्रणाम किया, और कार में बैठ कर रामबाबू के घर पर पहुंचा।



छब्बीस

विवाह की सारी तैयारियां हो चुकी थीं। यह तय हुआ था कि बरात बाकायदा मुनीमजी के कस्बे से आयेगी, और शादी यहीं बनारस में होगी। अवश्य यह तो बताने की जरूरत नहीं है कि सारा खर्च तथा अन्य प्रबन्ध रामबाबू के जिम्मे था। मुनीमजी ने दहेज के सम्बन्ध में कोई मोलभाव नहीं किया। रामबाबू ने इस सम्बन्ध में साफ-साफ बात करनी चाही तो मुनीमजी ने बड़ी भावुकता में आकर यह कहा—"यह तो मेरा लड़का उस दिन तक था, जिस दिन तक जेल नहीं गया था, जब से आपने उसे छुड़ा लिया तब से वह आपका लड़का हो गया। अपने लड़के को क्या लेना या देना है यह आपही सोचिये। मुझे कुछ नहीं कहना है। बस मेरी स्त्री की यह इच्छा है कि अन्तिम समय में जाकर गंगा किनारे विश्वनाथ जी के चरणों में निवास करें।"

रामबाबू ने कहा—"वह तो पहले ही तय हो चुका है कि आपको गंगाजी के पास ही एक मकान दिया जायगा। और

चूंकि आप शराफत कर रहे हैं, इसलिए मेरी तरफ से यह भी सुन लीजिये कि आपकी दोनों लड़कियों की शादी भी मेरे जिम्मे है। जब आपने कह दिया कि सन्तोषकुमार मेरा लड़का हो गया, तो उसकी बहनें भी मेरी लड़की हो गईं।"

इस पर मुनीमजी की आंखों में आंसू आ गये, और यदि समधी का रिश्ता न निभाना होता, तो वे रामबाबू के पैरों में गिर पड़ते। अपने को बहुत संभालते हुए बोले—"बस मैं क्या कहूं। अब तो मेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो गये। ईश्वर आपका कल्याण करे।"

रामबाबू भी बहुत खुश थे। छः महीनों से जो बोझ उनके सिर पर था, वह उतरता हुआ मालूम हो रहा था। उनके लिए दस बीस हजार रुपये कोई बात नहीं थी। बहिन को खुशी होगी, खानदान की नाक रह जायगी, बिरादरी के गालों पर थप्पड़ लगेगा, यह सोच कर वे खुश हो रहे थे। उन्होंने यह तय किया था कि इस शादी को बहुत ठाठ से करना है। सुकुमारी से वह घृणा करते थे, पर उन्हें बिरादरी वालों को चोट पहुंचाना था। कई कारणों से रामबाबू ने शादी की तारीख एक हफ्ते के अन्दर रखी थी। उन्हें अब भी कथित बिरादरीवालों से डर था।

यह तय हुआ था कि उसी दिन मुनीमजी तथा सन्तोषकुमार अपने कस्बे के लिए रवाना हो जायें। कस्बे के लिए रवाना होने के पहले सन्तोषकुमार ने चाहा कि शिब्बनलाल के यहां जाकर अपना सामान ले आवे। रामबाबू ने एक ड्राइवर को कार लेकर उसके साथ जाने के लिए कहा। जिस समय सन्तोषकुमार शिब्बनलाल के यहां पहुंचा, उस समय वह घर ही पर था। अपने घर के सामने कीमती कार देखकर वह कुछ घबराहट में बाहर निकल आया, और उस कार में से सन्तोषकुमार को निकलते देखकर बोला—"हे हे हे हे मैं तो जानता ही था कि

तुम छूट जाओगे। मैंने भी बड़े-बड़े पाइंट लड़ाये" कहकर उसने कार की तरफ देखकर आंख मारकर कहा—"कहो सब कुशल तो है। मैं तो जेल में मिलनेवाला था, पर सालों ने मुझसे कहा कि तुम रामजियावन हो, तुमसे मिलने नहीं दिया जायगा।"

सन्तोषकुमार ने उसकी बातों का कोई उत्तर नहीं दिया, और मकान की तरफ बढ़ते हुए बोला—"मैं अपना सामान लेने आया था।"

शिब्बनलाल करीब-करीब रुआंसा होकर बोला—"भई यही तो आफत हुई। पुलिसवाले तुम्हारा सारा सामान उठा ले गये। कुछ किताबें छोड़ गये थे, मैंने सोचा न मालूम कितनी खतरनाक हो, मैंने उनको जला दिया। मैंने किताबों का मोह नहीं किया, तुम्हारी भलाई देखी।"

सन्तोषकुमार उलटे पांव लौट पड़ा, बोला—"तुमने किताबों को जलाकर बहुत बुरा किया। उनमें एक भी खतरनाक नहीं थी। कुछ इधर-उधर की और कुछ एम० ए० की किताबें थी। रहा जो सामान पुलिसवाले ले गये, उन्हें तो मैं वसूल कर लूंगा।"

इस पर शिब्बनलाल बहुत घबराया, क्योंकि पुलिसवाले कुछ भी नहीं ले गये थे। किताबों को उसने गुदड़ी बाजार में बेच दिया था। सिर खुजलाते हुए बोला—"तुम क्यों कष्ट करोगे, मैं ही पुलिसवालों से सारा सामान वसूल कर घर पहुंचा दूंगा। तुम मुझे पता बताते जाओ।"

"अगर पुलिसवालों ने तुम्हें नहीं दिया तो?"

"देंगे कैसे नहीं? उनके बाप देंगे। जब तुम बरी हो गये, तो वे तुम्हारा सामान कैसे रख सकते हैं?"

सन्तोषकुमार ने रामबाबू का पता दे दिया। फिर जाकर कार में बैठ गया। शिब्बनलाल ने आगे बढ़कर कार की

खिड़की पर हाथ रखते हुए पूछा—"यह रामबाबू तुम्हारे कोई लगते हैं ?"

सन्तोषकुमार ने एक बार सोचा कि उत्तर न दे, फिर यह सोचकर कि उत्तर देने से ही शिब्बनलाल को ज्यादा ठेस लगेगी, बोला--"रामबाबू मेरे भावी श्वसुर हैं।"

कार भर्र से रवाना हो गई, और शिब्बनलाल वहां पर भौंचक्का खड़ा रहा। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उस दिन से उसे न मालूम क्या सूझा, उसने वान्टेड के कालम के साथ-साथ मैट्रीमोनियल का कालम भी देखना शुरू किया।

सत्ताईस

मुनीमजी जब घर पहुंचे, तो इतने खुश थे कि खुशी के मारे जमीन पर उनके पांव नहीं पड़ रहे थे। और जैसी कि उनकी आदत थी खुशी के कारण वे कहीं इसको डांटते थे तो कहीं उसको फटकारते थे। घर के सामने खड़े होकर मुहल्लेवालों को सुना-सुनाकर बातें कहते थे, और काल्पनिक दुश्मनों के विरुद्ध गालियां देते थे। शादी का सारा इन्तजाम सत्यवती के हाथों में था, पर वे यही समझते थे कि वे ही सारा इंतजाम कर कर रहे हैं। पति की आदतों से परिचित होने के कारण सत्यवती उन्हें किसी-न-किसी काम में उलझाये रहती थी। धोबी के यहां जाओ, मजदूर बुला लाओ इत्यादि। इन बातों के कारण मुनीमजी हर समय व्यस्त रहते थे, और स्वाभाविक रूप से यही समझते थे कि वे ही सब कुछ कर रहे हैं। मुनीमजी की इस धारणा से सत्यवती को कोई झगड़ा नहीं था। जब तक सत्यवती के हाथों में कुंजी थी, तब तक उसे इस बात की परवाह नहीं थी कि मुनीमजी सन्दूक पर सवार होकर बैठे रहें। मुनीमजी की

बीमारी का कोई पता नहीं था। उनकी बीमारी मानसिक थी, आशाभंग के कारण ही हुई थी, इस कारण फिर से आशा की खेती के लहलहा उठते ही उनकी सारी बीमारी जाती रही।

आनेवाली बहू को कहीं किसी प्रकार का कष्ट न हो इसकी उन्हें बड़ी फिक्र थी। वे हर समय अपनी कन्याओं को डांट बताते रहते थे—"देखना कहीं उसके साथ बेतरतीब बात न करना। वह पढ़ी-लिखी है, तुम लोगों की तरह गंवारिन नहीं है, बड़े घर की बेटी है।" इत्यादि इत्यादि।

सन्तोषकुमार की बहनों के मन में आनेवाली भौजाई के लिए एक कोमल-सी भावना थी, पर यह जो मुनीमजी ने बार बार तुलनात्मक रूप से सीख देना शुरू किया, और आनेवाली बहू के मुकाबले में उन्हें गंवारिन बतलाया, उससे उनके मन की वह कोमल भावना नष्ट-सी हो गई, और उसके स्थान पर एक दूसरी ही भावना उत्पन्न होने लगी। यद्यपि मुनीमजी ने सत्यवती को इस प्रकार की कोई बात नहीं कही थी कि तुम देहातिन हो इत्यादि, पर सत्यवती अपनी विलक्षण बुद्धि से यह समझती थी कि इस सबन्ध में जो कुछ भी कन्याओं को कहा जा रहा है, वह प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्षरूप से उस पर भी लागू होता है। पर उसने अपनी आदत के अनुसार मुनीमजी को बोलने दिया। जब मुनीमजी कई बार इस लहजे में बोल चुके, और अति हो गई, तब सत्यवती ने एक दिन कह डाला—"अगर उसका इतना दिमाग है और हम लोग निरी देहातिन हैं, तो वह हमारे घर में आ क्यों रही है?"

मुनीमजी अपने को देहाती नहीं समझते थे, क्योंकि उनके बचपन का एक बड़ा अंश बनारस में बीता था। इसके अतिरिक्त वे यह समझते थे कि वे पढ़े लिखे हैं, और पढ़ा-लिखा होते ही आदमी कितना भी देहाती हो, वह स्वयं सभ्य और शहरी हो

जाता है। भावी पुत्रवधू पर इस हमले का बचाव करते हुए बोले—"वह तुम्हारी लड़कियों के पास थोड़े ही आ रही है। वह तो सन्तोषी के पास आ रही है, जो बी० ए० पास है और बड़े-बड़े साहबों से गिटपिट करनेवाला है। उसका रोब तो पुलिसवाले और जेलवाले भी मानते थे।"

बीच में बात काटती हुई सत्यवती ने कहा—"मुझे तो तुम्हीं से डर है कि कहीं तुम उससे ऐसी कोई बात न कह दो जिससे वह समझे कि हमारे घर में सभ्यता नहीं है। हम लोगों से बात करते-करते तुम्हारा दिमाग बहुत चढ़ा हुआ है। अच्छा हुआ मौका लगा मैं बताये दे रही हूं कि उसके सामने तुमने उससे या हम लोगों से कोई बदतमीजी की बात की, तो तुम्हें बताऊंगी।"

शादी के मात्र तीन दिन बाकी थे। तैयारी जोरों पर थी। इसलिये मुनीमजी ने बात बढ़ाना उचित नहीं समझा, अपने स्वर के पारे को उतारते हुए बोले—"तुम तो नाहक हर बात को अपने ऊपर ले लेती हो। मैं तो इन लड़कियों को जरा सीख दे रहा था।"

बात वहीं पर खतम हो गई और तैयारी चलने लगी। सन्तोषकुमार बनारस जाकर अपने लिये दो-तीन सूट सिलवा लाया। सारी तैयारी समाप्त सी हो चुकी थी, प्रत्येक कार्य पर अन्तिम स्पर्श दिया जा रहा था। रामबाबू का आदमी आकर बीच-बीच में सब देख जाता था, और साथ ही मुनीमजी को बराबर खर्चा भी देता जा रहा था। मुनीमजी भी माले मुफ्त दिले बेरहमवाला हिसाब कर रहे थे, यद्यपि इसके पहले ही घर की मरम्मत आदि हो चुकी थी, पर इस थोड़े समय के अन्दर बहुत से मजदूरों को इकट्ठा लगाकर उसकी फिर से कायापलट कर दी गई। इसी प्रकार के अन्य खर्च होते रहे। रामबाबू का आदमी आकर इन बातों को देखकर खिन्न होने के बजाय खुश

होता था क्योंकि रामबाबू का यह हुक्म था कि ऐसे सारा काम किया जाय कि यह न मालूम हो कि रामबाबू का सम्बन्ध किसी ऐरे-गैरे से हो रहा है।

अगले दिन बरात रवाना होनेवाली थी। सत्यवती तैयारी में और मुनीमजी हमेशा की तरह डांट-फटकार करने और चिल्लाने में लगे हुए थे। उनके निकट तैयारी का अर्थ ही डांट-फटकार और चिल्लाना था। इस बीच में बड़ी लड़की भी सारे कुनबे के साथ आ गई थी, और घर में मचनेवाले शोर को और बढ़ा रही थी। सब खुश थे। केवल सन्तोषकुमार के मन में विशेष खुशी नहीं थी। उसके मन यह बात खटक रही थी कि रामबाबू के खर्च से ही यह सारा रागरंग हो रहा था। उसे यह भी बुरा मालूम हो रहा था कि वह इस समय बेकार है, और भविष्य में नौकरी पाने की एकमात्र आशा रामबाबू थे। यों तो रामबाबू का स्वभाव उसे बहुत पसन्द था, और उन्होंने उसे जेल से छुड़ाकर उसके साथ जो एहसान किया था, वह ऐसा था कि कभी भूला नहीं जा सकता था। मुनीमजी तो कस्बे भर में यही कहते फिरते थे कि उनके रोब के ही कारण सन्तोषकुमार छोड़ दिया गया। पर वह तो जानता था कि उसे छुड़ानेवाले मुनीमजी नहीं बल्कि रामबाबू थे। इतना सब होते हुए भी उसे कहीं पर कुछ खटक रहा था, और उसके घर में छोटे से लेकर बड़े तक जिस प्रकार खुश थे, वह उसे अस्वाभाविक ज्ञात हो रहा था। कहीं पर इसमें इतरता की गंध आ रही थी, पर उसने तो भाग्य के सामने घुटना टेक दिया था, और किया भी क्या जा सकता था। भागकर स्वतंत्र होकर रहने की चेष्टा कर चुका। उसका जो नतीजा हुआ, वह तो देख लिया। उसने देख लिया कि शिवनलाल ऐसे मित्र किस प्रकार कायर और ढोंगी प्रमाणित हुए। पुलिस देखते ही सिट्टीपिट्टी भूल गई। और जब

छूटकर कार में बैठकर गया तो फौरन भला आदमी हो गया। शिव्बनलाल तो उसका सारा सामान (उसमें कुछ चीजें गायब थीं) यहां कस्बे तक पहुंचा गया क्योंकि जब वह रामबाबू के यहां सामान लेकर पहुंचा था तो उस समय वह अपने घर आ चुका था। यहां आकर दो-तीन घंटे रहा तो मुनीमजी को बराबर बाबूजी-बाबूजी कहता रहा, सत्यवती को माताजी कहता रहा, और जब भी उन दोनों में से कोई सामने दिखाई पड़ता तो उठकर खड़ा हो जाता, और ऐसा चेहरा बनाता मानो दुम हिला रहा हो।

इन बातों से सन्तोषकुमार को दुःख ही हुआ था। वह बैठे-बैठे यही सोचा करता था कि इस दुनिया में न तो आदमी की कदर है, न गुणों की कदर है, बस कदर है तो सफलता की और रुपयों की। यहां तो बस चलते का नाम गाड़ी है। ऐसी ही बात सोचते हुए वह गम्भीर बना रहता था। पर कोई उसकी परवाह नहीं करता था मानो उसका इस शादी से कोई सम्बन्ध ही न हो। केवल सत्यवती बीच-बीच में उसे देखकर कुछ पूछ जाती थी, पर वह भी उसके गांभीर्य को कोई महत्व नहीं देती थी। बात यह है कि वह कल्पना ही नहीं कर सकती थी कि ऐसी अच्छी शादी के कारण कोई दुखी कैसे हो सकता है।

अगले दिन सवेरे ही कारें आ-जानेवाली थीं। तय हुआ था कि कारों में ही बरात जायेगी। मुनीमजी पास ही एक पाकड़ के पेड़ के नीचे खड़े होकर यह हिदायत दे रहे थे कि कारें आकर पेड़ के नीचे इस प्रकार खड़ी रहेंगी। कहीं-कहीं जमीन कुछ ऊंची-नीची थी, वे मजूरों से उसे ठीक करवा रहे थे। इतने में डाकिये ने आकर उनके हाथ में एक पत्र दिया। और इन दिनों जैसा सभी लोग मुनीमजी से करते थे, उसने हंसकर इनाम के लिए हाथ बढ़ा दिया। पर इतने में ही मुनीमजी जेब से चश्मा

निकालकर पत्र को पढ़ने लगे थे। ज्यों-ज्यों वे पत्र पढ़ते जाते थे, त्यों-त्यों उनके चेहरे पर जैसे कालिख पुतती जा रही थी। जब वे पत्र पढ़ चुके, तब जैसे वे अपनी उम्र में २० साल से अधिक ज्ञात हो रहे थे। उन्हें ऐसा मालूम होने लगा जैसे सारी दुनिया उनकी आंखों के सामने से लुप्त हो गई, और आंखों में अंधेरा छा गया। बड़े कष्ट से उन्होंने अपने को गिरने से संभाला। इतने ही में डाकिये ने फिर से गिड़गिड़ाते हुए कहा—"मुनीमजी इनाम।"

मुनीमजी ने उसे बहुत बुरी तरह डांट दिया, और जैसा कि प्रत्येक विपत्ति में न मालूम कितने वर्षों से करते आये थे, वे सत्यवती को पत्र दिखाने के लिये घर पहुंचे। वहां दूर से देखा तो सत्यवती कस्बे की अन्य स्त्रियों के साथ तैयारी में लगी हुई थी। सबके चेहरों पर खुशी थी। पर सबसे अधिक खुशी सत्यवती के चेहरे पर थी। उसका चेहरा आनन्द से विभोर दृष्टिगोचर हो रहा था। वर्षों में वह इतनी खुश कभी नहीं दिखाई पड़ी थी। ठीक तो है सारा जीवन गरीबी में बीता था। इन चार-पांच दिनों में तंगी में कमी हुई थी। वह मानो अन्नपूर्णा बन रही थी।

मुनीमजी ने पत्र को जेब में रक्खा और वे घर से निकल पड़े। टहलते-टहलाते वे कस्बे के शिवमंदिर में पहुंचे। वहां पर उन्होंने कुछ समझकर जेब से एक चांदी का रुपया निकाला, और शिवलिंग के ऊपर रक्खा। फिर बाकायदा घंटा बजाकर और प्रदक्षिणा कर मंदिर से बाहर निकले। एकान्त स्थान देखकर एक जगह बैठ गये, और वहां पत्र को निकालकर फिर से पढ़ने लगे। पत्र यों था—

"आप मुझे नहीं जानते होंगे, पर इससे क्या। जो बातें लिख रहा हूं उन पर ध्यान दीजिये। कभी आपने यह सोचा है कि राम-

बाबू इतना खर्चा करके आपके घर पर आकर अपनी भानजी का विवाह कर रहे हैं, इसमें क्या रहस्य है। आप तो सोचते होंगे कि यह विधाता की देन है, पर आप जानते हैं कि रामबाबू ऐसे लोगों के लिये ऐसी कोई बात नहीं है। यदि वे किसी धनी घराने में अपनी भानजी की शादी करा सकते, तो आपके साथ रिश्ता न कायम करते। अब आपको असली बात लिखता हूं। सुकुमारी गर्भवती हो गई थी, उसका गर्भ यहीं पर बनारस में गिराया गया। कोई भी लेडी डाक्टर सुकुमारी की जांच करके इसकी तसदीक कर सकती है। समय रहते सावधान हो जाइये। कम-से-कम जांच तो करा लीजिये। धन के लोभ में आप अपने लड़के को बकरा बनाकर रामबाबू की भेंट न चढ़ाइये। सबसे बड़ी बात यह है कि सुकुमारीवाली बात बहुत-से लोगों को मालूम हो चुकी है, और यदि आपने फिर भी शादी की तो कहीं आपको लेने-के-देने न पड़ जायं।"

आपका शुभचिन्तक—

मुनीमजी ने कई बार इस पत्र को पढ़ा, और हर बार उनकी पहले से बुरी दशा हुई। शिवलिंग पर एकदम पूरा रुपया रख देने पर भी (जैसा कि उन्होंने जीवन में इससे पहले कभी भी नहीं किया था) मन कुछ शान्त नहीं हुआ था।

अभी-अभी वे सत्यवती का चेहरा देखकर आये थे। कहीं उसे इस बात का पता लग गया, तो न मालूम उस पर क्या बीते। फिर भी यह तो निश्चित ही था कि जान-बूझकर वह कभी भी इस शादी को होने नहीं देगी। कहां घर में सुख-ही-सुख हो रहा था, और अब सारा हाहाकार हो जायगा। मामूली हाहाकार नहीं बहुत बड़ा हाहाकार। शायद वे यदि इस समय एकाएक मर जायं, तो इतना हाहाकार न होगा। फिर भी क्या किया जाय? जैसा कि सन्तोषी कहा करता है मक्खी देखकर तो निगली नहीं

जाती। और मक्खी भी क्या मक्खी कि कुल में कलंक लग जायगा। नहीं, जो कुछ भी हो इस सत्य का सामना करना ही पड़ेगा। कम-से-कम रामबाबू से यह तो कहा ही जा सकता है कि किसी लेडी डाक्टर से वे सुकुमारी की जांच कराना चाहते हैं। रामबाबू नाराज हों तो हों, वे कर क्या लेंगे। पर हायहाय, सारा काम बिगड़ गया। सोचा कुछ और था और होने कुछ और जा रहा है। कस्बेवालों के सामने बड़ी नाक कटेगी। लोग खूब हंसेंगे।

इसी प्रकार मुनीमजी बैठे-बैठे सोचते रहे। दिन की रोशनी घटने लगी। और साथ-साथ उनकी आंख की रोशनी, यहां तक कि संध्या हो गई। शिवमंदिर में आरती होने लगी। बहुत दिन से वे आरती देखने नहीं गये थे। आरती में कोई खास बात नहीं थी। आरती तो काशी विश्वनाथ की होती है। कुछ भी हो वे उठ पड़े, और आरती देखने पहुंचे। वहां एक पुरोहित, आठ-दस लड़के और दो-तीन स्त्रियां थीं। लड़के प्रसाद के लोभ से आये थे। मुनीमजी जाकर एक किनारे खड़े हो गये। बड़े भक्ति-भाव से शिवलिंग की तरफ देखते रहे। बिल्कुल तन्मय और तल्लीन होने की चेष्टा करते रहे। इस चेष्टा में आंखें छलछला आईं। आरती समाप्त हुई तो प्रसाद बंटा। पहले मुनीमजी को फिर स्त्रियों को फिर लड़कों को प्रसाद दिया गया। प्रसाद में अमरूद के कुछ टुकड़े और शायद एक या दो मसले हुए पेड़े थे, पर इसी के लिये लड़कों में काफी उत्साह था। लड़के दो-दो बार प्रसाद लेने के लिये उत्सुक रहते थे, और पंडित जी को इस सम्बन्ध में काफी सावधानी करनी पड़ती थी। फिर भी एक-आध लड़का दो बार प्रसाद ले ही जाता था। एक लड़का शायद इसी प्रयास में था तो दूसरे लड़के ने चुगली कर दी। इस पर पंडितजी बड़े

सन्देह में पड़ गये, और अभियुक्त लड़के से बोले—"तुम प्रसाद ले चुके हो, तुम्हें नहीं मिलेगा।"

उस लड़के ने बहुतेरा कहा, पर पंडितजी नहीं माने, और प्रसाद बांटना बन्द कर चले गये। वह लड़का रोने लगा। मुनीमजी को बड़ा दुःख हुआ। बोले—"क्यों बेटा रोते क्यों हो? लो यह इकन्नी लो" कहकर उन्होंने उसे एक इकन्नी दी।

वह लड़का खुश हो गया, और रोते-रोते हंसने लगा। दूसरे लड़के उसकी तरफ ईर्ष्याभरी दृष्टि से देखने लगे। कहां वह सबकी दया का पात्र था, और कहां सब उससे ईर्ष्या करने लग गये। लड़कों में से एक उसके पक्ष का भी निकल आया, और उसने मुनीमजी से कहा—"इसने प्रसाद नहीं लिया था।"

मुनीमजी बोले—"तब तो पंडितजी ने इसे नाहक ही प्रसाद नहीं दिया।"

उस लड़के ने कहा—"उस चुगलखोर ने झूठ-मूठ जो लगा दिया, ऊँ ऊँ।"

मुनीमजी को जैसे राह मिल गई। एकाएक उनकी बुझी हुई आंखें विस्फारित हो गईं। उन्होंने सोचा, तब तो दुनिया में झूठे और चुगलखोर कई बार अपनी बात चला जाते हैं। जिसने सुकुमारी के विरुद्ध लिखा है, वह खुलकर सामने क्यों नहीं आता? शुभचिन्तक! शुभचिन्तक है तो खुलकर सामने क्यों नहीं आता? इस प्रकार पीछे रहकर वार क्यों करता है? उनके सौभाग्य से जलता है, बस और कोई बात नहीं। वे फौरन वहां से चल पड़े, और रास्ते में जेब से पत्र निकालकर उसके सौ टुकड़े कर डाले, और फिर उन्हें मसलकर एक तरफ फेंक दिया। नहीं, वे ऐसी बातों के चक्कर में नहीं पड़ेंगे। वे पैर बढ़ाते हुए जल्दी-जल्दी घर पहुंचे।

यद्यपि उन्होंने निश्चय कर लिया था कि पत्र की बात पर

ध्यान नहीं देना है, पर इतने ही समय में उनके मन में कोई ऐसा परिवर्तन हो गया था जिसके कारण अब उन्हें कुछ सूना-सूना-सा लगने लगा था। सत्यवती उसी प्रकार से काम में लगी हुई थी। घर में चहल-पहल पूर्ववत् थी। इस समय बाहर की स्त्रियां या तो चली गई थीं या दूसरे कमरों में थीं। सत्यवती को एकांत में पाकर मुनीमजी ने अकारण सशंकित-सा पूछा—"कोई खबर तो नहीं है?"

सत्यवती ने कहा—"नहीं, कोई खबर नहीं है। तुम कहां थे?" फिर उत्तर की प्रतीक्षा बिना किये ही बोली—"सन्तोषी के नाम से एक चिट्ठी आई है।"

मुनीमजी मानो ऐसी ही किसी बात की शंका कर रहे थे। उनका चेहरा एकाएक फक पड़ गया। वे एक सांस में बोल गये—"कहां-कहां? किसकी चिट्ठी?"

"किसकी चिट्ठी, पता नहीं। रक्खी है। तुम भी घर पर नहीं थे, और सन्तोषी भी कहीं गया है।"

मुनीमजी के जैसे दम-में-दम आया। फिर वे घबड़ाकर बोले—"वह चिट्ठी कहां है? लाओ, लाओ।"

छोटी लड़की ने लाकर उनके हाथ में वह चिट्ठी दे दी। बिलकुल वही लिफाफा और लिफाफे पर वही हस्तलिपि। उन्होंने चिट्ठी को खोला नहीं, और लोटा लेकर मैदान के लिये निकल पड़े। बिलकुल रास्ता छोड़कर चलते रहे। उन्हें भय था कि कहीं रास्ते में सन्तोषी से भेंट न हो जाय। वे चलते गये, चलते गये, और जब कस्बे से बहुत बाहर निकल आये, तब उन्होंने लोटे को जमीन पर रख दिया, और एक भुखाया हुआ शेर जिस तरह से शिकार पर झपटता है, वे उस तरह से उस पत्र पर झपटे, और एक क्षण के अन्दर उन्होंने उसे नोच-नोच कर अलग कर दिया। फिर उन सारे नुचे हुए टुकड़ों को एकत्र कर उन्हें लोटे के पानी

में बोर दिया। हाथ डालकर वे पानी में उन टुकड़ों को मसलते रहे, और जब उनका एक लिबलिबा-सा पिंड बन गया, तो उन्होंने अंगुलियों से एक गड्ढा खोद कर उसे गाड़ दिया। फिर शान्त होकर वे घर लौटे।

जिस समय वे घर लौटे, उस समय सन्तोषकुमार घर आ चुका था। मुनीमजी को देखते ही उसने पहला प्रश्न किया—"मेरा कोई पत्र आया है?"

मुनीमजी एक क्षण के लिये घबड़ा गये, पर तुरंत ही अपने को संभालते हुए बोले—"नहीं तो।"

सन्तोषकुमार ने माफी मांगने के लहजे में कहा—"विमला ने कहा था।"

"नहीं-नहीं, वह मेरा पत्र था। इनको क्या काम है सिवाय वाहियात बकने के" कहकर वे लड़कियों पर बुरी तरह बिगड़ने लगे और क्या-क्या कह गये। बोले—"इन लोगों को तो इसी में मजा आता है।"

सन्तोषकुमार समझ नहीं पाया कि मुनीमजी इतनी छोटी-सी बात पर इतने नाराज़ क्यों हो रहे हैं। उसने समझा काम की अधिकता के कारण ही ऐसा हुआ होगा। बोला—"उन लोगों ने गलत समझा होगा।"

मुनीमजी पहले से अधिक क्रुद्ध होते हुए बोले—"यह कोई पहला मौका थोड़े ही है। इनका तो यह रोज लगा रहता है।" कहकर उन्हें एकाएक याद आई कि जो लोग इस शादी को तोड़ने की फिक्र में हैं, वे चिट्ठी लिखकर ही नहीं रुकेंगे, शायद आकर भेंट करने की कोशिश करें। बोले—"बेटा, तुम गये कहां थे? पुराने लोगों के ख्याल से शादी के पहले बहुत सावधान रहना चाहिये। अपरिचित लोगों से मिलना नहीं चाहिये क्योंकि न मालूम दुष्ट किस भेष में घूम रहे हैं। बस एक दिन का मामला है। जरा कष्ट करो।"

अट्ठाईस

बड़े ठाटबाट के साथ यथासमय बरात रामबाबू के यहां पहुंची। रामबाबू अपने मित्रों सहित दूर से ही अगवानी करने आए थे। यथारीति सारा कार्य चलता रहा, पर मुनीमजी दो दिन पहले जितने सुखी थे, अब उतने सुखी नहीं थे। सन्देह का एक कांटा उनके मन में बुरी तरह चुभ रहा था। वे अपने मन को जितना भी यह कहकर तसल्ली देने की चेष्टा करते कि वे पत्र झूठे थे, मन उतना ही मानता नहीं था। सच तो यह है कि रामबाबू ऐसे धनी और प्रभावशाली व्यक्ति खुशामद करके एक कस्बे के फर्म के मुनीम के लड़के से अपना रिश्ता क्यों कायम करेंगे? मान लिया कि यह सारा भाग्य का खेल है, पर उन्होंने उन पत्रों को सत्यवती तथा सन्तोषी से छिपाया क्यों? यदि जो बात लिखी थी, वह झूठी थी, तब तो और भी दिखाने में कोई हर्ज नहीं था। मुनीमजी बराबर इन्हीं बातों में घुल रहे थे। जिन बातों को वे सारी जिन्दगी सबसे अधिक महत्व देते थे, वे ही उनकी आंखों के सामने इस समय हो रही थीं, पर वे उनकी

तरफ से बहुत-कुछ उदासीन हो रहे थे। रामबाबू यही समझे कि दहेज की रकम से वे असन्तुष्ट हैं।

वे इस बात के लिए लालायित थे कि एक बार सुकुमारी को देखें। देख तो वह पहले भी कई बार चुके थे, पर उस समय की दृष्टि केवल एक प्रशंसा तथा कृतकृत्यता की दृष्टि थी, पर इस समय वे उसे विश्लेषण की दृष्टि से और यदि हो सके तो अन्दर बैठकर देखना चाहते थे। वे इसी बात की प्रतीक्षा में थे कि किसी प्रकार सुकुमारी को देखें। उनका मन कहता था कि सुकुमारी को देखते ही सारा सन्देह दूर हो जायगा। आखिर वे भी तो कुछ तजर्बा रखते हैं। धूप में बाल सफेद नहीं किए। वे टकटकी लगाकर इसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। यों तो वे इंगित भर कर देते तो सुकुमारी एक दफा नहीं बीस दफा उनके सामने आती, पर मन में जो चोर बैठा हुआ था, उसके कारण जो बात शायद किसी प्रकार अस्वाभाविक न होती, वह उन्हें इस समय अस्वाभाविक प्रतीत होती थी।

सन्तोषकुमार विवाह की तरफ से बहुत-कुछ उदासीन था। उसे ऐसा मालूम हो रहा था कि जो लोग भी उसे देख रहे हैं, वे अपने मन में इस बात को समझ रहे होंगे कि उसका यह सारा ठाट-बाट रामबाबू का दिया हुआ है, और इस कारण उसे जब किसी से परिचय कराया जाता था, तो बड़ी झेंप-सी होती थी। वह मन-ही-मन समझ रहा था कि यहां केवल उसका एक ही परिचय है, वह है रामबाबू का दामाद। सिर्फ यहीं पर क्या आगे से शायद सारे जगत में उसका यही परिचय रहे। मानों पहले उसके जीवन में जो कुछ भी था तथा हुआ। वह कुछ भी नहीं था, और रामबाबू का दामाद बनना ही उसके जीवन का एकमात्र कृत्य तथा पुरुषार्थ था। वह बैठकर झुंझला रहा था। खैरियत यह थी कि मुनीमजी एक तरफ चुपचाप बैठे थे।

उसे उनसे कुछ डर था कि खामखाह वे रईसी की बातें न करें। पर वे तो चुपचाप बैठे हुए थे। वे घर में चाहे जितनी भी उछल-कूद करें, बाहर सभ्य ढंग से बरतना जानते हैं। पिता के गंभीर तथा कुछ घबड़ाए हुए चेहरे की तरफ देखकर उसे बड़ी करुणा आई। सोचने लगा, भले ही वह स्वयं सुखी हो या न हो, वह समझता था दोनों बातें ही उसके लिए बराबर हैं, पर पिता, माता, बहनें सब सुखी तो रहेंगी। इसी प्रकार वह अपने विचारों में बहता रहा।

यथासमय शादी हो गई। मुनीमजी ने सुकुमारी को अपनी विश्लेषक दृष्टि से देखा तो सचमुच उनका सारा सन्देह दूर हो गया। कितनी मासूम बच्ची है। भला यह ? नहीं कभी नहीं। बचपन में रामलीला के लिए उनके कस्बे में एक लड़का सीता बना करता था। यद्यपि वे जानते थे कि यह अमुक लड़का है, तो भी जिस समय वह सीता बनकर बैठता था, उस समय उसे देखकर उनका मन गद्‌गद् हो जाता था। सुकुमारी देखने में उसी सीता की तरह थी। वे एकाएक बहुत खुश हो गए, और सामने रक्खी हुई तश्तरी में से चार पान निकालकर एक साथ मुंह में भर लिए। अवश्य ही वह पत्र झूठ था, इसमें कोई सन्देह नहीं।

सन्तोषकुमार ने जो सुकुमारी को देखा तो वह अलंकारों, कपड़ों, फूलों आदि से इस प्रकार लदी थी कि उसे मालूम हुआ कि वह उसे बहुत कम देख पा रहा है। उसके मन में जो उदासीनता की बर्फ जमी हुई थी, वह एकाएक पिघल निकली, और चारों तरफ फैली हुई सुगन्ध जैसे उसके हृदय में बस गई। वह विभोर हो गया, और अपनी अनजान में ही यंत्रचालित की तरह उससे जो कुछ भी मंत्र आदि कहाया गया, उन्हें कहता रहा। जब तक विवाह की सारी रस्में पूरी हो गईं, तब तक दोनों बहुत बुरी तरह थक चुके थे। देखनेवालों के लिए शायद यह

एक तमाशा था, और तमाशा जितना ही दीर्घ होता है, कुछ लोगों को उतना ही मजा आता है, पर उनके लिए यह सरासर उत्पीड़न था। सुकुमारी प्रारम्भ में बहुत ही सजग थी, पर अन्त तक वह भी बहुत उदासीन हो गई थी। न मालूम किसने इतने दीर्घ अनुष्ठानों का आविष्कार किया था।

दोनों अपने-अपने विचारों में डूबे हुए थे। सन्तोषकुमार का दिमाग तो उसे खुश होने से रोक रहा था, पर उसका हृदय धीरे-धीरे अकारण प्रफुल्लित होता जा रहा था। शरीर थक चुका था, मन भी कुछ थका-सा ही था, पर अन्तःस्तल में कोई मधुर संभावना हिलोरें ले रही थीं। ऊपर से मन और शरीर सोये हुए थे, पर भीतर आशा की घृत दीपशिखा जल कर जाग रही थी।

सुकुमारी का मन भी अपने ढंग से आनन्द से भरा हुआ था। बहुत दिन रोगी रहने के बाद जैसे एकाएक स्वस्थ हो गई हो। खैर, यह दुःस्वप्न तो खतम हुआ। कितनी भारी विपत्ति थी, पर अब तो टल गई। उसने सन्तोषकुमार को ध्यान से देखा था, और उसका मन प्रफुल्लित हो गया था। सन्तोषकुमार में कोई खास बात नहीं थी। एक साधारण युवक था। कोई भी इस जगह पर [illegible] खुशी होती। जब अपने मन की बात [illegible] भी हो इससे क्या? उसे अपने जीवन के [illegible] की बातें याद आ रही थीं। कोई तो मधुर, [illegible]वी। इसी प्रकार सोचती हुई वह किसी समय [illegible]

और सन्तोषकुमार भी सो गया। एक बार उसके जी में यह आया था कि इर्द गिर्द कोई नहीं है, जिसे जीवनसंगिनी बनाया है, उससे कुछ बात तो कर ले। पर आंशिक रूप से लज्जा ने, और

आंशिक रूप से आलस्य ने उस पर काबू पा लिया, और वह अपने अनजान में ही किसी समय सो गया।

रात के तीन या चार बज चुके थे। पूर्व दिशा में कुछ हलकी सी आलोकरेखा, का भ्रम हो रहा था। ऐसे समय सन्तोषकुमार एकाएक जगा। लोग दो तरह से जगते हैं, एक तो धीरे-धीरे जागृति आती है, और एक एकदम से पूरी जागृति आ जाती है। सन्तोषकुमार एकदम से जाग गया, और उसकी चिन्ता का सूत्र वहीं से शुरू हुआ जहां से नींद के कारण वह कट गया था। चारों तरफ सन्नाटा था। सुकुमारी अभी सो रही थी। सन्तोष-कुमार बैठे-बैठे कुछ सोचता रहा, कान डालकर आवाज सुनने की कोशिश की कि इर्द-गिर्द कहीं कोई है तो नहीं। फिर उसने उस तरफ देखा जिधर सुकुमारी लेटी हुई थी। एकाएक जैसे उसकी सारी उधेड़बुन जाती रही, और वह उठकर दरवाजे की तरफ गया, फिर भेड़े हुए दरवाजे के सामने कुछ देर तक सुनता रहा। फिर उसने उसमें कुंडी चढ़ा दी। फिर वह आकर सुकुमारी से सटकर बैठ गया। वह अब भी सो रही थी। शादी के समय उसके माथे पर जो चन्दन आदि अन्य प्रसाधन द्रव्य लगे हुए थे, वे बहुत-कुछ मिट चुके थे। अब उस प्रसाधन के कारण उसका चेहरा सुन्दर मालूम होने के बजाय असुन[illegible] और मामूली [illegible] हो रहा था। सन्तोषकुमार जिस जोश [illegible] उसे [illegible] सम[illegible] जैसे एकाएक ब्रेक लग गया। [illegible] उस[illegible]

एक बार उसमें इच्छा हुई कि वह लौट [illegible] ह पर लेट जाय। पर मन नहीं माना। वह बैठे-बैठे [illegible] को देखता रहा, और उसके मन में अभी-अभी जो निराशा की भावना आई थी, वह कुछ घट गई। ब्रेक जैसे ढीला हो गया। उसके मन में यह विचार आया कि असुन्दर और मामूली ही सही, यह उसी क[illegible] अपनी निजी स्त्री है। हां बिलकुल निजी। किसी दूसरे का

उस पर कोई अधिकार नहीं है। उसके शरीर के अंग-अंग पर उसका, उसीका अधिकार है। ऐसा सोचकर उसका मन कोमल हो आया, वह सुकुमारी के शरीर के अंगों प्रत्यंगों को देखने लगा। कपड़ा कहीं-कहीं से हटा हुआ था। इतना अन्तरंग रूप से उसने कभी किसी स्त्री को नहीं देखा था। जितना उसने देखा, उतना तो उसने देखा हो, बाकी की उसने कल्पना की। और उसका मन पहले से भी कोमल हो गया। हाथ सुकुमारी की तरफ बढ़ना चाहते थे, पर उसने हाथों को रोक लिया। कुछ हिचकिचाहट मालूम दे रही थी। एक संकोच। कुछ देर वह रुका। फिर उसने एक बार सुकुमारी की सारी देह-लता पर दृष्टि दौड़ाई। हाथ बढ़ने ही वाले थे कि सुकुमारी जग पड़ी, और वह संतोषकुमार को सामने बैठा देखकर कपड़े संभाल कर बैठ गई।

सन्तोषकुमार और सुकुमारी की आंखें चार हुईं। अब सन्तोषकुमार ने पहले-पहल सुकुमारी को बिलकुल सामने से देखा, पर न मालूम क्या बात हुई देखकर उसकी ऐसी अवस्था हुई जैसे उसने भूत देखा हो। मन की कोमल पिघलती हुई भावनायें एकाएक जमकर कड़ी हो गईं। उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। उसने सुकुमारी को खूब ध्यान से देखा। नहीं यह वही है। इसमें कोई सन्देह की गुंजाइश नहीं है। यह वही कमला है। कमला क्या यह तो याद नहीं पड़ता, शायद कमला माथुर हो, पर यह है वही इसमें शक नहीं। उसे खूब याद है कि दो-तीन स्त्रियों के साथ यह आई थी। सब स्त्रियां कपड़ों और गहनों से उच्च घराने की मालूम देती थीं। देखते ही वह समझ गया था कि इनमें से कौन डाक्टर शकुन्तला की सहायता लेने आई है। साथ की स्त्रियां भी विशेषकर एक स्त्री जो शायद कमला की मां थी, बहुत चिन्तित थी, पर उनकी चिन्ता और प्रकार की थी, और यह जो कमला थी उसकी चिन्ता और प्रकार

की थी। इसकी आंखों के नीचे काली रेखाएं थी, जैसे हफ्तों से सोई न हो। उन दिनों सन्तोषकुमार की आंख खुल चुकी थी, उसे डाक्टर शकुन्तला की प्रैक्टिस की पोल मालूम हो चुकी थी। अभी तीन महीने पहले की बात है, या चार महीने हुए होंगे

सन्तोषकुमार ने सुकुमारी को फिर एक बार ध्यान से देखा, और वह फिर इसी नतीजे पर पहुंचा कि यह वही है। यद्यपि सुकुमारी अभी नींद से उठी ही थी, वह समझ गई कि कोई बात जरूर है। एक बार उसे सन्देह हुआ। तो क्या? पर यह कैसे हो सकता है। उसका तो पता किसी को नहीं है। सोचा संकोच होगा, उसे तोड़ना चाहिये। उसी ने पहले बात की, धीरे-से कहा—"आप क्या देख रहे हैं?"

सन्तोषकुमार ने कहा—"मैं तुम्हें देख रहा हूं।" फिर कुछ रुककर पहले से अधिक रुखाई के साथ बोला—"तुम कमला माथुर हो न?"

यदि एक साथ सौ वज्र भी सुकुमारी पर गिरते, तो भी वह इतनी भयभीत नहीं होती। कुछ देर के लिए उसका गला रुंध गया, ओठ सूख गये। ऐसा मालूम हुआ जैसे आंखों से आंसू निकल आयेंगे। पर उसने अपने को प्रबल प्रयास से रोककर कहा—"कमला माथुर कौन? आप मेरा नाम भूल रहे हैं।"

सन्तोषकुमार ने अपनी स्त्री को फिर ध्यान से देखा, और बोला—"तुम्हारा नाम' तो मैं भूला नहीं हूं। अब तो कभी भूल भी नहीं सकता। पर तुम हो कमला माथुर इसमें शक नहीं।" कहकर उसने उसे फिर ध्यान से देखा।

सुकुमारी ध्यान से सन्तोषकुमार को देखने लगी, निराशा के साहस से बोली—"यह आप क्या कह रहे हैं मेरी समझ में नहीं आ रहा है, मैं तो सुकुमारी हूं। आप किसी से पूछ लीजिये।"

"तुम सुकुमारी अवश्य थीं, पर तुम जिस दिन डाक्टर

शकुन्तला के यहां गई, उस दिन सुकुमारी मर गई, और रह गई कमला माथुर। बल्कि सुकुमारी तो उससे पहले ही मर गई, डाक्टर शकुन्तला के यहां तो केवल उसकी मृत्यु पर मुहर लग गई।" कहकर सन्तोपकुमार पलंग से उतरकर पास की एक कुर्सी पर बैठ गया। जैसे सुकुमारी कोई सांप हो, और उससे अलग जाने में ही भलाई थी। वह तीन सौ मील फी घंटे की रफ्तार से सोच रहा था।

सुकुमारी समझ गई कि सन्तोपकुमार को सब मालूम है। बोली—"यह सब आप क्या कह रहे हैं, आपको भ्रम हो रहा है। डाक्टर शकुन्तला कौन? मैंने तो उनका नाम भी नहीं सुना। आप अपने मन को स्थिर करें।"

सन्तोषकुमार पर जैसे क्रोध का भूत सवार हो गया। बोला—"तुमको यह मालूम होना चाहिए कि मैं कोई सुनी हुई बात नहीं कह रहा हूं जो तुम उसे अस्वीकार कर रही हो। जो कुछ मैं कह रहा हूं वह मेरी आंखों-देखी बात है। याद करो डाक्टर शकुन्तला के दफ्तर में घुसते ही सबसे पहले काउन्टर पर बैठा हुआ एक बाबू मिलता है, जो पांच रुपये लेता है। उन दिनों मैं ही काउन्टर पर बैठता था। और तुम अपना नाम कमला माथुर बतलाकर मुझे रुपये देकर भीतर गई थीं।"

सुकुमारी समझ गई कि सन्तोषकुमार को धोखा देना संभव नहीं है। फिर भी अन्तिम बार साहस करती हुई बोली—"यदि आपको ऐसा शक है, तो आपने मुझसे शादी क्यों की?" उसका चेहरा कोने पर लाई गई नागिन की तरह हो रहा था।

सन्तोषकुमार बोला—"मुझे तो अभी मालूम हुआ।" कहकर वह क्रोध के आवेश में आ गया। बोला—"मुझे तो अब मालूम हुआ, पर तुम लोगों को तो पहले से मालूम था, फिर तुमने जान-बूझकर मेरा जीवन क्यों खराब किया? क्या गंगाजी में

पानी का अभाव था या कि रस्सियों की कमी थी या मिट्टी का तेल नहीं मिलता था कि तुमने मुझ पर यह अन्याय किया ?"

और भी इसी तरह उसने कई बातें कहीं। सुकुमारी अब कुछ कह नहीं रही थी, रो रही थी। फफक-फफककर रो रही थी। उसकी सारी प्रतिरोध-शक्ति समाप्त हो चुकी थी। सन्तोषकुमार आवेश में बोलता ही जा रहा था—"तभी तुम्हारे मामा साहब बड़े कृपालु हो गए। हमको समझना चाहिए था कि धनी लोग जब गरीबों पर कृपालु होते हैं तो उसमें कुछ राज होता है।"

वह इसी लहजे में बराबर बोलता जा रहा था। एक-से-एक निष्ठुर वाक्य उसके मुंह से निकल रहे थे। इतने में उसने देखा कि रामबाबू सामने खड़े हैं। दरवाजा तो बंद था, शायद वे खिड़की की राह से कूद आए थे। उन्होंने आज्ञामूलक इंगित से सुकुमारी से रोने के लिए मना किया। वह चुप हो गई। फिर वे कुर्सी खींचकर सन्तोषकुमार के पास बैठे। मालूम होता है वे सारी बातचीत सुन चुके थे। फिर भी उनकी बातचीत में कहीं भी क्रोध का कोई नामोनिशान नहीं था। बोले—"सन्तोष बाबू, शान्ति से काम लो। यह हम सबका दुर्भाग्य है कि तुम उस काउन्टर के बाबू थे और तुमने सुकुमारी को देख लिया था, नहीं तो सारा काम तो ठीक हो गया था।"

बीच में बात काटते हुए सन्तोषकुमार ने कहा—"जी हां, नहीं तो आपका धोखा देना सफल हो गया था।" कहकर उसने आग्नेय नेत्रों से रामबाबू को देखा।

"यह तुम्हारी मर्जी है, चाहे जो कुछ कहो। पर तुमको यह खुद मालूम है क्योंकि तुम डाक्टर शकुन्तला के काउन्टर के बाबू थे कि आज दिन सैकड़ों ऐसी शादियां हो रही हैं, और किसी को कानोकान पता नहीं होता। बच्ची ने गलती की, स्त्री होने के कारण उस गलती की वजह से उस पर विपत्ति आई। डाक्टर

शकुन्तला ने ऊपरी तौर पर उस विपत्ति को दूर किया, और इस बच्ची को यह मौका दिया कि वह फिर से जीवन में अपना मौका ले। तुम डाक्टर शकुन्तला के काउन्टर के बाबू थे, फिर भी शायद उनसे घृणा करते हो, पर मैं जानता हूं कि वह कितनी बड़ी सामाजिक सेवा कर रही है। गलतियां किससे नहीं होतीं ? पुरुष भी तो गलतियां करते हैं, पर प्रकृति ने पुरुष को ऐसा बनाया है कि वह किसी विपत्ति में नहीं फंसता। संभव है कि वह हजार गलती करे फिर भी कुछ न हो, पर स्त्री एक ही बार गलती करे, और संभव है कि वह विपत्तिग्रस्त हो जाय। ऐसे मौके पर डाक्टर शकुन्तला ऐसे लोग काम आते हैं। जो कुछ भी हो अब सारी परिस्थिति तुम्हारे सामने है। मैं तो यही कहूंगा कि तुम इस बच्ची को माफी दे दो, और यह किसी स्त्री से निकृष्ट साबित नहीं होगी।"

कहकर रामबाबू सन्तोषकुमार के चेहरे की तरफ देखने लगे। मानो रामबाबू की बातों को समर्थन करने के लिए सुकुमारी फिर फफक-फफककर रोने लगी। सन्तोषकुमार बोला—"आपने हम लोगों को धोखा दिया, हम इसे मंजूर नहीं कर सकते।"

रामबाबू का चेहरा कड़ा पड़ गया। अब सवेरा हो चुका था। हवेली में लोगों की चहल-पहल मालूम हो रही थी। सुकुमारी का रोना लोगों को सुनाई पड़ सकता था। रामबाबू ने सुकुमारी को कमरे से बाहर चले जाने के लिए इशारा किया। वह एक क्षण हिचकिचाई, फिर दरवाजा खोलकर उसे भेड़कर चली गई। रामबाबू ने सन्तोषकुमार से कहा—"दिल पर हाथ धर कर कहो तुमने कभी कोई गलती नहीं की ?"

सन्तोषकुमार ने बिना कुछ सोचे ही कह दिया—"नहीं, मैंने इस प्रकार की गलती नहीं की।"

"तो उस हालत में तुम्हें शिकायत की गुंजाइश है। पर यह

भी तो सोचो जो हो गया सो हो गया। यदि इससे हमारी भद्द होगी, तो तुम्हारी भी कुछ कम भद्द नहीं होगी।"

"चाहे कुछ भी हो मैं सत्य को छिपा नहीं सकता।"

रामबाबू ने कहा—"यह तो ठीक है पर ऐसा सत्य किस काम का जिससे किसी को भी लाभ न पहुंचे, उलटा जितने लोगों का इससे सम्बन्ध है, मुनीमजी से लेकर मुझ तक सभी को इससे अपार कष्ट होगा।"

"पर मैं सत्य को छिपा नहीं सकता। यद्यपि मैं समझ रहा हूं कि स्वयं मुझको उससे भारी नुकसान है।"

रामबाबू का क्रोध थिरा गया था, बोले—"यह तो एक आकस्मिक घटना है कि तुमने सत्य को जाना। मान लो यदि तुम डाक्टर शकुन्तला के यहां क्लर्क न होते तो तुम इस सत्य को नहीं जानते, और यही समझ कर चलते कि सब ठीक है।"

सन्तोषकुमार ने कहा—"इससे क्या? इस प्रकार के तर्क करते हुए तो सारी वास्तविकताओं को मिथ्या प्रमाणित कर दिया जा सकता है क्योंकि जब भी कोई बात होती है तो वह किसी-न-किसी कारण से होती है। यदि यह कहकर तर्क किया जाय कि वह कारण न होता तो क्या होता, तब तो फिर प्रत्येक बात को उसका विपरीत करके दिखाया जा सकता है।"

रामबाबू समझ गये कि सन्तोषकुमार किसी प्रकार नहीं मानेगा। बोले—"बाल की खाल को जाने दो। अब इसके व्यवहारिक पहलू पर आओ। यह तुम हमें ठीक-ठीक बताओ कि क्या करना चाहते हो। तुम्हारी तो फिर से शादी हो जायेगी, अवश्य यह याद रखना कि ऐसी शादी न होगी।"

सन्तोषकुमार बीच ही में हहराकर हंस पड़ा, बोला—"हा हा हा हा, क्या सुन्दर शादी है। इसकी सुन्दरता को या तो मैं जानता हूं या डाक्टर शकुन्तला।"

इतनी गहरी उत्तेजना दिलाये जाने पर भी रामबाबू स्थिर रहे। बोले—"मैं कोई डींग नहीं मार रहा हूं, आटा दाल का भाव तुम्हें अच्छी तरह मालूम नहीं है, तभी तुम इस तरह अव्यवहारिक बातें कर रहे हो। माना कि तुम्हारी शादी में कुछ नुक्स है, पर तुम्हारी और सब बातें तो ठीक हैं। बैठे-बिठाये तुमको सब कुछ मिल रहा है। मैं इस बात को खुद देखूंगा कि तुम्हें किसी बात की कमी न रहे। मैं तो यहां तक कहता हूं कि तुम चाहो तो सुकुमारी से कोई सम्बन्ध न रक्खो, पर भद्द न कराओ। यदि तुम दूसरी शादी कर लो, तो भी मुझे कोई आपत्ति न होगी। बस तुम सुकुमारी का त्याग न करो। उसे घर में बनी रहने दो, वह एक कोने में पड़ी रहेगी, न तुमसे कुछ मांगेगी और न जांचेगी।"

एक क्षण के लिये जैसे सन्तोषकुमार सन्देह में पड़ गया। उसके मन में कुछ करुणा का भाव भी उत्पन्न हुआ, पर यह करुणा किसके प्रति थी यह स्वयं समझ पाने के पहले ही उसे डाक्टर शकुन्तला के यहां का वह दृश्य याद आया जब कई अन्य स्त्रियों के साथ सुकुमारी वहां पर अपने को कमला माथुर बताकर गई थी। उसे वह भी याद है कि जिस समय कमला माथुर भीतर गई, उस समय उसके साथ-साथ वे सब महिलायें भी गई थीं। थोड़ी ही देर में पहले दबी हुई और फिर खुली हुई चीख सुनाई पड़ी थी। यह कोई नई बात नहीं थी। रोज दस-बीस बार ऐसा होता था। वह पत्थर के एक बुत की तरह उस आवाज को सुनने का अभ्यस्त हो चुका था। उस समय उसने सुकमारी की उस चीख को कोई महत्व नहीं दिया था। ऐसी सैकड़ों स्त्रियों की चीखों में उसकी भी एक चीख थी। अब उसे याद पड़ रहा था यह दूसरों से अधिक करुण थी। मालूम होता है साथ की सब स्त्रियों ने उसे पकड़कर दबा रक्खा था, और

डाक्टर शकुन्तला बल्कि उसके साथ की वह आधुनिक कपड़े पहनी हुई चमारिन दाई अपना काम कर रही थी। उस समय तक सन्तोषकुमार को यह पता लग चुका था कि इन दोनों में से एक को भी आधुनिक शरीर विज्ञान का कुछ पता नहीं था।

ये दृश्य बल्कि शब्द और दृश्य, उसकी कल्पना में कौंध गये। वह सहसा बोल उठा—"यह कौन-सा न्याय है कि अपराध तो किया किसी दुष्ट ने, और सजा मुझे दी जाने की कोशिश की जा रही है। नहीं ऐसा नहीं हो सकता।" कहकर वह उठ खड़ा हुआ, और दरवाजे की तरफ लपका।

रामबाबू शायद इस बात के लिए तैयार ही थे। जितनी तेजी से सन्तोषकुमार उठा, उससे भी तेजीसे वे उठे, और उन्होंने सन्तोषकुमार के हाथ को पकड़ उसे पहले की कुर्सी पर बैठा दिया। बोले—"ऐसे मामलों पर भावुकता से काम नहीं चलता, खूब सोच-समझकर ही कोई काम करना चाहिए। आखिर जो चाहोगे वह करना तो हर समय तुम्हारे हाथ में रहेगा, फिर जल्दबाजी क्यों करते हो? किसी बात की ऊंच-नीच अच्छी तरह समझकर तभी कोई कदम उठाना चाहिए।" कहकर मानो पहले के प्रसंग पर लौटते हुए बोले—"तुम क्या समझते हो कि जिस दुष्ट युवक ने सुकुमारी को गुमराह किया, उसे कोई सजा नहीं मिली? उसे सजा मिली, और वह अब जीवित नहीं है। इसलिए यदि तुम यह समझते हो कि दुनिया में कोई ऐसा व्यक्ति है जो तुम पर हंसेगा, तो इस धारणा को तुम अपने मन से निकाल दो।"

सन्तोषकुमार ने कहा—"अच्छा! वह आदमी मर गया। वह कैसे मरा?" कौतूहल ने सन्तोषकुमार पर काबू पा लिया था। इसीसे उसने यह प्रश्न पूछा।

"मरना जीना तो भगवान के हाथ में है। मैंने तो यही सुना है कि बम्बई में गुण्डों ने उसे मार डाला।"

सन्तोषकमार जैसे कुछ सोचता रहा, बोला—"पर इससे मुझे क्या? हो सकता है उसे अपने पापों का दंड मिला। पर मुझे भी दंड मिल रहा है। मेरी तो हालत अजीब हो गई है। न चुप रहते ही बनता है न चिल्लाते ही बनता है। क्या करूं कुछ समझ में नहीं आता। पिताजी ने अजीब झमेले में फँसा दिया।"

रामबाबू ने कहा—"उन्हें क्यों इसमें घसीटते हो? वे तो गऊ आदमी हैं। तीन-तेरह से कोई मतलब नहीं रखते। दोष अगर देना है तो मुझे दो, पर जैसा कि मैं बता चुका दोष मेरा भी नहीं है।"

"फिर किसका दोष है?"

"किसका बताया जाय? अब इस प्रश्न पर दिमाग खपाने से फायदा भी क्या है? अब तो परिस्थिति उत्पन्न हो चुकी है, उसका सामना किया जाय।"

"आप करिये सामना, मैं तो जाता हूं।"

"तुम जाओगे कहां? तुम जानते हो कि तुम कहीं नहीं जा सकते। यदि मुनीमजी को यह सारी बात मालूम हो तो पता नहीं उन पर क्या बीते। तुम्हारे घर के अन्य लोग भी इस पर खुश न होंगे। तुम वहां दस दिन भी नहीं ठहर सकोगे। बनारस लौट आओगे, और लोगों को सारी बात मालूम हो जायगी तो तुम्हारा मित्र शिव्बनलाल भी तुम्हें आश्रय न देगा। मैं कोई धमकी नहीं देता हूं, इतना ही कहता हूं कि सारी बात सोच लो। और मेरी एक छोटी-सी बात सुन लो कि कम-से-कम आज चुप रहो। इतनी भीख मुझे दो। सब मेहमानों को आज बिदा कर देता हूं, कल जो चाहे सो करना। है मन्जूर यह छोटी-सी बात?'

कहकर रामबाबू अपनी कुर्सी से अपने हाथों को जोड़कर ऐसे झुके मानों वे सन्तोषकुमार के पैरों को छूना चाहते हों।

यद्यपि सन्तोषकुमार काफी दूर बैठा था, और रामबाबू किसी भी प्रकार अपना कुर्सी पर बैठे-बैठे उसके पैरों को छू नहीं सकते थे, फिर भी सन्तोषकुमार ने चिप्रता के साथ अपने पैरों को खींच लिया, बोला—"यह तो बहुत छोटी बात है, मैं कहिये एक दिन नहीं तीन दिन चुप रहूं।"

रामबाबू गद्‌गद् होकर बोले—"बस यही चाहिए। तुम तीन दिन चुप रहो, इसके बाद सोचा-समझा जायगा। जरूरत पड़ेगी तो मुनीमजी से भी सलाह की जायगी।"

सन्तोषकुमार ने जल्दी से कहा—"नहीं नहीं उनको यह बात बताने की जरूरत नहीं है।"

"आखिर उनको क्या, सभी को मालूम तो हो ही जायगा।" रामबाबू एक ढेला-सा मार रहे थे जिससे पानी की थाह मिले।

सन्तोषकुमार ने कहा—"देखा जायगा।"

सच तो यह है कि जितना ही समय बीतता जा रहा था, उसकी उधेड़-बुन उतनी ही बढ़ती जा रही थी। क्रोध के आवेश में वह थोड़ी देर पहले जिस दृढ़ निश्चय पर पहुंचा था वह धीरे-धीरे शिथिल होता जा रहा था। वह भी सोचने के लिये समय चाहता था। सुकुमारी को ग्रहण कर सारी बातों पर पर्दा डालकर चुप बैठ रहने की कल्पना उसे असह्य थी। पर विकल्प में वह क्या करेगा, यह कुछ स्पष्ट नहीं हो पा रहा था। वह मुनीमजी तथा सत्यवती को इतना लोभी नहीं समझता था कि सब कुछ जान-बूझकर वे उसे दोष देंगे, पर दोष दें या न दें, उस घर में रहना तो उसके लिये असंभव था। वही बल्कि मां-बाप को दोष दे सकता था कि उन्होंने बिना कुछ जाने-बूझे शादी मंजूर कर ली। हां दोष तो वह लगा सकता था, पर इससे कुछ काम

न बनता। नतीजा वही होता, उसे घर से निकलना पड़ता। फिर? फिर क्या होता? क्या वह शिब्बनलाल के यहां जाता, या सेठ अमोलकचन्द के यहां जाता या डाक्टर शकुन्तला के पास जाता। सब दरवाजे उसके लिए बन्द हो चुके हैं। और यदि बन्द भी नहीं उसने सहजात बुद्धि से यह समझ लिया कि इन सब स्थानों के हुए हैं, तो इनमें से एक के पास जाकर आत्मसमर्पण करने के बजाय वह रामबाबू के ही सामने आत्मसमर्पण क्यों न करदे। दाम की दृष्टि से देखा जाय तो इधर अधिक मिल रहा है। जब आत्मा का सौदा ही करना है, तो जो सबसे अधिक बोली बोल रहा है, उसी के हाथ आत्मा को क्यो न बेचा जाय।

पर वह दृश्य, वह चीख? वह किसी नतीजे पर नहीं पहुंच सका। रामबाबू उन व्यक्तियों में से थे जो कल की परवाह तो करते थे, पर यदि आज ठीक हो गया तो फिर कोई चिन्ता नहीं करते थे। वे उठते हुए बोले—"तो फिर पक्की बात रही। तीन दिन तक तुम चुप रहोगे। इस बीच में सोचा जायगा।"

कहकर उठ गये, पर फौरन ही उन्होंने अपने दो अत्यन्त विश्वस्त कारिन्दों को सन्तोषकुमार पर लगा दिया। एक जाकर उस कमरे के इर्द-गिर्द मंड़राने लगा। दूसरा कमरे में घुसकर सारा सामान ठीक-ठाक करने लगा। और इस प्रतीक्षा में रहा कि सन्तोषकुमार उससे बोले तो वह वहीं उससे गप्प लड़ावे।

पर सन्तोषकुमार ने उसकी तरफ निगाह उठाकर भी नहीं देखा। वह अपने विचारों में ही मग्न रहा। उसे चिन्ताओं के अथाह समुद्र में कहीं किनारा नहीं दिखाई पड़ रहा था। बैठे-बैठे कई बार इच्छा हुई कि बिना किसी से कुछ कहे-सुने वह चल दे, पर अपने वचनों से बद्ध होने के कारण वह उस बात को भी नहीं कर सका। उसे यह मालूम नहीं था कि किसी भी हालत में

वह हवेली छोड़कर जा नहीं सकता था। रामबाबू ने उन दो कारिन्दों के अतिरिक्त अपने फाटक पर एक और विश्वस्त नौकर बिठा दिया था जिसका इस समय केवल इतना ही काम था कि वह सन्तोषकुमार को बाहर जाने न दे, और यदि वह जाय तो उसकी खबर फौरन रामबाबू को दे।

उन्तीस

शादी के अगले दिन मुनीमजी तथा अन्य बराती घर लौट गये। तय यह था कि उसी दिन उन्हीं के साथ वर याने सन्तोषकुमार वधु सहित लौटेगा, पर रामबाबू ने ऐन मौके पर अपने को ऐसा बीमार बनाया कि सारा कार्यक्रम उलट गया। वे बोले—"मुनीम जी, जिन्दगी का कोई ठिकाना नहीं है। बीमार तो मैं पहले भी कई दफे हुआ हूं पर इस बार मुझे भय हो रहा है। ऐसी हालत में मैं इन लोगों को छोड़ नहीं सकता। आप भी तब तक रुक जाइये न।"

मुनीमजी कुछ हिचकिचाये, क्योंकि कस्बे के घर में सारी व्यवस्था की गई थी। वह सब उलटी जा रही थी। रामबाबू इन बातों को शायद ताड़ते हुए बोले—"उधर जो खर्चा हुआ, उसकी कोई फिक्र न कीजिये। सब ठीक हो जायगा। लोगों को समझाकर कह दीजियेगा कि इस तरह मैं बीमार हो गया, बस वे समझ जायेंगे। उनका क्या नुकसान है। एक दावत अब मिलेगी और ईश्वर ने चाहा तो एक दावत फिर मिलेगी। हां आपका रहना

नहीं हो सकता, पर किसी भी समय तैयार रहियेगा कि कार जाते ही यहां आ जावें। पता नहीं मेरी कब क्या परिस्थिति हो।"

मुनीमजी तसल्ली देकर उनसे विदा हुए। वे फिर लड़के से मिलने गये। वहां उन्होंने अन्य बातों के उपरान्त धीरे से सन्तोषकुमार के कान में कहा—"जिस मकान को बनारस में देने के लिए कहा है, मौके से उसके अन्य सामान के लिये भी कह देना।"

मुनीमजी अपनी बात सम्पूर्ण भी नहीं कर पाये थे कि सन्तोषकुमार रुखाई के साथ बोला—"आपको बस इन्हीं बातों को पड़ी है। आप जाइये, चिन्ता न कीजिये।"

मुनीमजी ने अपने बेटे को कनखी से देखा। वे समझे कि अभी धनी के दामाद हुए देर नहीं हुई, और बाप की तरफ से रुख बदल गया। नरम होकर बोले—"बेटा बुरा क्यों मान रहे हो ? मैं कोई साथ थोड़े ही ले जाऊंगा। शादी ब्याह में लेने-देने की बातचीत नहीं होगी, तो और क्या होगी।"

सन्तोषकुमार खीझ गया, बोला—"बस इन्हीं विचारों ने तो देश का नाश कर रखा है। आप लोग रुपया ही देखते हैं" वह और भी कुछ कहने जा रहा था पर कुछ सोचकर रुक गया। पर उसके चेहरे से असन्तोष साफ झलक गया।

मुनीमजी ने समझा कि इस समय अधिक बात करना उचित नहीं है। वे अपने साथ पांच हजार से ऊपर नकद तो लिये ही जा रहे थे। बात बदल कर इधर-उधर की बात कर जब परिस्थिति कुछ संभली तो चले गये। अन्य बरातियों के लिए बसों की व्यवस्था थी, पर मुनीमजी कार में रवाना कर दिये गए, और यद्यपि वे सबसे पीछे चले, फिर भी वे अपने कस्बे में सबसे पहले पहुंचे। उन्होंने सबको रामबाबू की बीमारी की बात सुनाई। बोले—"यहां दावत वगैरह तो जैसी होती वैसी होगी।"

सत्यवती इस बात से बहुत निराश हुई क्योंकि उसने अपनी पतोहू के सम्बन्ध में तरह-तरह की कल्पनायें बना रक्खी थीं। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे शादी हुई ही न हो। सन्तोषकुमार की तीनों बहनें भी बहुत असन्तुष्ट हुई," मुनीमजी बोले—"इस पर तो किसी का हाथ नहीं है, अब प्यारी भानजी ठहरी, कैसे इस समय मामा को छोड़कर आती। इसलिए मुझे मानना पड़ा।" कहकर उन्होंने अपनी पत्नी से सफाई से आंख मारी कि सत्यवती ने फौरन तीनों लड़कियों से कहा—"जाओ तुम अपने-अपने काम पर जाओ। दावत में कोई कसर न होने पावे।"

तीनों लड़कियां अपने-अपने निर्दिष्ट कामों के लिए रवाना हो गईं। तब मुनीमजी ने हंसते हुए अपने नये खरीदे हुए चमड़े के सूटकेस से नोटों का बड़ा-सा पुलिन्दा निकाला, और सत्यवती के हाथ में रख दिया। सत्यवती ने जो इतने नोटों को एक साथ देखा, तो उसकी आंखें चमक उठीं। पतोहू को न देख पाने का सारा दुःख जाता रहा।

मुनीमजी बोले—"देखना किसी को पता न लगे, नहीं तो दामादराम को जानती ही हो, कुछ-न-कुछ मांग बैठेगा।" उनका मतलब बड़ी लड़की के पति से था।

इस बात के उल्लेख से ही सत्यवती गम्भीर हो गई। बोली—"यहां छिपाने से क्या होगा, वह तो तुम्हारे साथ ही गया था। सब पता होगा। सौ-दो सौ तो देना ही पड़ेगा, और देने में हर्ज भी क्या है। जब लड़के के कारण यह दिन देखने को मिला, तो लड़कियों को भी कुछ फायदा क्यों न हो।"

मुनीमजी अप्रसन्न हो गये। बोले—"जब लड़की की शादी कर दी, तभी से वह गैर हो गई। खैर सौ रुपये तक दे देना। कहना अभी सब वसूल नहीं हुआ।"

मुनीमजी कुछ देर चुप रहे, जैसे सोचते रहे कि और कुछ

कहे या न कहे। फिर बोले—"एक बात याद रखना कि अभी शादी हुई नहीं, और तुम्हारे सुपुत्र जी का तेवर बदल गया। आज सवेरे ही मैंने उससे याद दिलाया कि बनारसवाला मकान ठीक-ठाक करा लेना, इस पर मुझसे बिगड़ ही तो गया। बड़ी मुश्किलों से चुप कराया।"

सत्यवती लड़के के विरुद्ध इन बातों को सुनने के लिए तैयार नहीं थीं। अप्रसन्न होकर बोली—"तुमने अपनी मुनीमी दिखाई होगी, इसी से नाराज हो गया होगा। वह बहुत समझदार लड़का है, अपने ढंग से सब काम कर लेगा। देखो उसने क्या-क्या किया।" कहकर वह तृप्ति के साथ नोटों के बन्डल को सन्दूक में रखने लगी, और साथ ही साथ शतमुख होकर लड़के के गुणों का बखान करने लगी। मुनीमजी को इसमें कोई आपत्ति नहीं थी, इस कारण वे चुप मारकर सारी बातें सुनने लगे। इतने में बराती भी पहुंच गए, इस कारण सत्यवती व्यवस्था में लग गई, और मुनीमजी एक कागज निकालकर उस पर हिसाब लगाते रहे कि कितना खर्च हुआ, कितना वसूल करना है इत्यादि।

तीस

सन्तोषकुमार ने शादी की रात में ही जो रुख लिया था, उसके सम्बन्ध में केवल तीन व्यक्तियों को ही पता था, एक तो स्वयं रामबाबू और दूसरी रामबाबू की बहन और तीसरी उनकी स्त्री। कहां घर में कल कितनी खुशी थी, और आज इन लोगों में मुर्दनी छाई हुई थी। अवश्य बाकी सब नौकर-चाकर तथा रिश्तेदार इन बातों से बेखबर खुशियां मना रहे थे। खुशियां मनाने का अर्थ यह था कि जिसके हाथ जो कुछ लगता था, वह उसे हड़प करता जाता था। रामबाबू की बीमारी तो सम्पूर्ण रूप से काल्पनिक थी, पर नौकर ऐन मौके पर इस बीमारी से खुश थे ही थे, यद्यपि ऊपर से वे कुछ हल्ला वगैरह कम कर रहे थे। रामबाबू के बिस्तरे पर पड़ जाने से उनको चोरी करने में आसानी होती थी। वे ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी आंख बचाना बहुत मुश्किल था। पर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, जब मुनीमजी के जाते ही रामबाबू बिस्तरे से उठकर मामूली तरीके से घूमने-फिरने लगे। उनका मिजाज आज सबेरे से ही खराब था। बरात विदा होने पर मिजाज और भी

खराब हुआ। लोग समझ और सहम गए। सब नौकर-चाकर डरे हुए इधर-से-उधर फिरने लगे।

परिवार परिषद् की लम्बी बैठक हुई। इसमें रामबाबू, उनकी बहन सावित्री और उनकी पत्नी उर्मिला शामिल थीं। उन तीनों में से सावित्री सबसे अधिक घबराई हुई थी। उसकी हालत ऐसी हो रही थी जैसे किसी की नाव किनारे पर आकर फिर डूब जाय। शायद वह अकेली में रोती भी रही थी। मानों इस परिवार परिषद् का उद्घाटन करती हुई वह उर्मिला से बोली—"भाभी मैं तुमसे बराबर कहती रही कि ईश्वर ने तुम्हें बच्चा नहीं दिया, यह अच्छा ही है। देखो न छः महीने से मेरी क्या-क्या दुर्गति हो रही है।" ऊपर की तरफ हाथ उठाकर बोली—"जब वे चले गये, तो इस निशानी को छोड़ते गए थे। उस समय तो यही मालूम हुआ था कि यह बहुत ही अच्छा रहा, पर देख रही हो कि क्या-क्या भद्द भी हो रही है। फिर भी तुम्हारी ऐसी भौजाई और भैया ऐसे भाई मिले हैं, इस कारण अभी तक जिन्दा हूं। नहीं तो उसे जहर खिलाकर, खुद जहर खाकर मर जाती।" कहकर सावित्री ने आंख पर आंचल रख लिया।

उर्मिला बोली—"जिसने इतना दूर तक पार लगाया, वह आगे भी पार लगायेगा। कोई तुम्हारा कसूर तो है नहीं।"

"कसूर तो उस कलमुंही का है, पर मारे तो हम सब लोग जा रहे हैं। मारे खानदान की भद्द पिट जायगी। मुझे तो सब अंधेरा दिखाई देता है।" कहकर उसने रामबाबू की तरफ देखा मानों यदि इस अंधेरे में कोई उजाला है तो एकमात्र वे ही हैं। उसकी दृष्टि में कातरता थी।

रामबाबू ने गहरी सांस लेते हुए अपने को आरामकुर्सी पर फैलाते हुए कहा—"बहन कुछ सुझाई नहीं देता। सब तरह से ऐसी बुरी हालत है कि हाथ पैर बंध चुके हैं। यह भला कौन

सोच सकता था कि डाक्टर शकुन्तला के काउन्टर पर और कोई नहीं यही बैठा होगा। सुनी-सुनाई को तो झूठा कर दिया जा सकता है, पर जिस बात को अपनी आंख से देखा, उसे कैसे विश्वास दिलाया जाय कि यह बात गलत है। बड़ी आफत में जान फंसी है। शादी से पहले यह गुल खिलता तो, और कहीं व्यवस्था करते। आज नहीं कल, कल नहीं परसों कोई न कोई वर मिल जाता। मुनीमजी की तरह के लोगों की दुनिया में कभी नहीं, पर यहां तो सारी बात हो गई तब यह गुल खिला।

इसी प्रकार तीनों कल्पना-जल्पना करने लगे। निकलने का कोई मार्ग दिखाई न पड़ा। अन्त में रामबाबू ने कहा—"इसमें से ईश्वर निकाले तभी हम लोग निकल सकते हैं। प्रेमकुमार के साथ जो उपाय किया गया, वह भी नहीं चल सकता।" प्रेमकुमार उस युवक का नाम था जो यहां पर छुट्टी बिताने आया था, और जिसके कारण सुकुमारी पर यह विपत्ति आई थी। रामबाबू बोले—"यदि इस समय सन्तोषकुमार को कुछ हो जाय, तो लोग यही कहेंगे कि दामाद को मरवा डाला गया क्योंकि उसने सत्य का आविष्कार कर लिया था।"

किसीने कुछ नहीं कहा। इतने में सन्तोषकुमार पर नियुक्त एक कारिन्दे ने आकर यह खबर दी कि एक व्यक्ति बिना कुछ पूछे-जांचे सन्तोषकुमार के कमरे में घुस आया, और अब वह सन्तोषकुमार से बात कर रहा है। रामबाबू का माथा ठनका, उन्होंने अर्थपूर्ण दृष्टि से सावित्री और उर्मिला को देखा, और वे फौरन उठ पड़े। जिस कमरे में पारिवारिक परिषद् की बैठक हो रही थी, उसके दरवाजे पर उन्हें सुकुमारी चोर की तरह खड़ी दिखाई पड़ी, पर वे जल्दी में थे, और लपक कर आगे बढ़ गये। वे सोचते जाते थे न मालूम यह कौन आदमी है। सन्तोषकुमार के कमरे में न जाकर जंगले की तरफ से सारी बात सुनने लगे।

वह व्यक्ति रामबाबू का परिचित था। दूर से रामबाबू ने उसे देखा, और उन्होंने दांत किटकिटाये। कौतूहल ने जोर मारा और वे उनकी बातचीत सुनने लगे।

यह व्यक्ति कह रहा था—"मैं एक ऐसी बात बताने आया हूं जिसका आपके जीवन से सम्बन्ध है।"

सन्तोषकुमार ने उसे ध्यान से देखा, और बोला—"माफ कीजियेगा मुझे अपने जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं है। आप जिस बात को कहना चाहते हैं, उस बात को अपने तक ही रखिये। मुझे किसी की बुराई,भलाई में नहीं पड़ना है।" कहकर उसने मुंह फेर लिया।

उस व्यक्ति ने निराशा के साहस से बली होकर कहा--"पर मैं आपकी स्त्री के सम्बन्ध में कुछ कहने आया था।"

सन्तोषकुमार क्रोध में आ गया। बोला—"आप जो बात कहने आये हैं, वह मुझे पहले से ही मालूम है। आप यही न कहेंगे कि वह गर्भवती हुई थी, फिर उसका गर्भ गिराया गया। इससे तो अधिक कुछ नहीं कहेंगे ? आपको मालूम होना चाहिए कि वह मेरे ही कारण गर्भवती हुई थी, अब आप यह कहेंगे कि गर्भ गिराया क्यों गया। इसका कारण यह है कि मैंने उस समय दुर्बुद्धि से शादी करने से इनकार किया था। पर अब मुझे अक्ल आ गई, और मैंने शादी कर ली।" कहकर उसने उस व्यक्ति की तरफ पागलों की-सी दृष्टि से देखा, और कहा—"जाइये अब किसी को यह बेहूदी बात न कहियेगा। जरूरत पड़ेगी तो मैं सारी बात सार्वजनिक रूप मे कहूंगा।"

वह व्यक्ति इस प्रकार की बातों की आशा नहीं करता था। वह कुछ घबड़ाकर उठा, और चलने को हुआ, पर सन्तोषकुमार बिजली की गति से अपनी कुर्सी से उठा, और उसने लपक कर उस व्यक्ति का हाथ पकड़ लिया, फिर उसे एक प्रकार जबरदस्ती

से कुर्सी पर बैठाते हुए बोला—"इतनी जल्दी जा कहां रहे हो ? अब तक तो मेरी बातें हुईं, अब अपनी बात बताओ।" कहकर वह हा हा हा हा करके उन्मत्त की तरह हंसा।

वह व्यक्ति घबड़ा गया, और फिर उठने को हुआ, पर सन्तोषकुमार ने उठकर अब की बार दरवाजा बन्द कर दिया, और दरवाजे की तरफ कुर्सी ले जाकर बैठ गया। बोला—"मिलने आये हो तो कुछ चाय पानी तो करते जाओ। तुम्हें मैंने इतना बड़ा सत्य बताया, इसका तो कुछ लिहाज करो। कुछ अपनी भी तो बातें बताओ।" कहकर उसने दाहिने हाथ से एकाएक ताल ठोका।

वह व्यक्ति रुखाई से बोला—"कैसी बातें ?"

सन्तोषकुमार ने उस व्यक्ति को फिर से सम्बोधन करते हुए कहा—"पहले आप यह तो बताइये कि आप हैं कौन ?" फिर ठहर कर बोला—"आप रामबाबू के कोई मित्र मालूम देते हैं, क्योंकि मित्र ही ऐसी सेवायें किया करते हैं जैसा आप इस समय करने आये थे।" कहकर वह एक कड़वी हंसी हंसा। वह उस व्यक्ति को ऐसे घूर रहा था जैसे वह कोई नई क़िस्म का जानवर हो।

वह व्यक्ति कुछ झेंप गया, बोला—"आप मुझको गलत समझे। यहां आने से मेरा मतलब रामबाबू को नुकसान पहुंचाना नहीं था। मेरा मतलब केवल समाज की सेवा करना था।"

सन्तोषकुमार उन्मत्त की तरह हंस कर बोला—"आप और समाज की सेवा ? इस बात से कैसे समाज की सेवा होती है यह तो बताइये ?"

"समाज की सेवा इस प्रकार होती है कि भ्रष्टता को सजा मिलती है।"

"क्या आपके समाज में केवल लड़कियों के लिये ही सजा

है ? मान लीजिए यदि मैं शादी न करता, तो आप या आपका समाज मुझे क्या कर लेता या मुझे क्या सजा देता ?"

"आपको भगवान सजा देता ?"

सन्तोषकुमार इस पर एक दम खड़ा हो गया। फिर उस व्यक्ति के कन्धे को पकड़कर झकझोरते हुए कहा—"मुझको भगवान सजा देता, और उस लड़की को तुम लोग सजा देते, जिनकी मांयें, बीबीयां, बहनें एक-न-एक वार डाक्टर शकुन्तला के यहां जाती हैं। हरामजादे।"

वह व्यक्ति सकपकाकर आत्म-रक्षा के लिये खड़ा हो गया। डर कर बोला—"मुझे जाने दीजिये।"

सन्तोषकुमार ने उसकी गर्दन पकड़कर उसे एक धक्का दिया। वह जाकर दीवार से टकरा गया। सन्तोषकुमार को इस पर भी शान्ति नहीं हुई। उसने पास ही रक्खी हुई चाय की छोटी-सी मेज से मक्खन वाली छुरी उठा ली, और उसे लेकर उसकी तरफ लपका। वह आदमी बुरी तरह चिल्लाने लगा। रामबाबू खड़े-खड़े यह सब देख रहे थे। उन्हें बहुत खुशी हो रही थी, पर जब उन्होंने देखा कि सन्तोषकुमार छुरी लेकर उस आदमी पर पिल पड़ा है, तो वे जिस रास्ते से उस दिन सवेरे प्रकट हुए थे उसी रास्ते से कमरे में घुस आये, और सन्तोषकुमार को निवृत्त करते हुए दरवाजा खोल दिया। उधर से कारिन्दे तथा अन्य नौकर आ गये।

वह व्यक्ति अब भी भयभीत-सा कोने में पड़ा हुआ था। उसी की खाली कुर्सी पर रामबाबू ने पहले तो सन्तोषकुमार को बैठा दिया, और फिर खुद बैठ गये। फिर एक कारिन्दे से बोले—"देखो तो यह कौन है ? मालूम होता है कुछ गहना वगैरह चुराने आया था। सन्तोषबाबू ने पकड़ लिया।"

कारिन्दे ने दृष्टि डालते हुए कहा—"हुजूर यह तो मनोहर बाबू हैं।"

रामबाबू तो सब कुछ देख ही रहे थे, बनावटी आश्चर्य से बोले—"अच्छा मनोहर बाबू हैं। बैठाओ-बैठाओ, इन्हें कुर्सी पर बैठाओ।" कहकर वे आगे बढ़े, और मनोहर बाबू से बोले—"आपको कोई चोट तो नहीं लगी ?"

मनोहर बाबू संभल कर उठ खड़े हुए, बोले—"नहीं, चोट तो नहीं लगी, पर आप न आते तो आपका दामाद मुझे मार डालता।"

रामबाबू सहानुभूति दिखाते हुए बोले—"यह क्या जानें कि आप कौन हैं। आप जंगले की तरफ से आये होंगे इसलिए इन्होंने आपको चोर समझा।"

सन्तोषकुमार बीच में बोल पड़ा—"मैं इन्हें चोर नहीं, सीनाजोर समझता हूं।" कहकर वह एक सांस में सारी बात सुना गया। रामबाबू तो यह चाहते ही थे कि इस प्रकार से जितने भी लोग इस किस्से को सुन लें उतना ही अच्छा है क्योंकि इससे एक साथ दो चिड़िया मरती थी। एक तो इतने आदमियों के सामने कहने के कारण मित्रों और शत्रुओं के सामने उस अफवाह का प्रामाणिक रूप से खंडन हो जाता था जो महीनों से सुकुमारी के इर्दगिर्द फैल रही थी। दूसरा सन्तोषकुमार अपने ही बयान से एक तरह से बंध जाता था। यदि बाद को वह और कुछ कहता, तो उसके लिए उसका दरवाजा बहुत कुछ बन्द हो जाता था।

रामबाबू ने सारी बातों को सुनकर कहा—"मनोहर बाबू, मैं आपको धन्यवाद देता हूं कि आपने आकर सन्तोषबाबू से जो बात बताई, उसके कारण आपको सत्य मालूम हो गया। आशा करता हूं कि आप इसी प्रकार समाज का कल्याण करते

रहेंगे।" यह पता नहीं लगा कि वे इन शब्दों को व्यंग में कह रहे थे या कि ईमानदारी से कह रहे थे।

मनोहर बाबू कुछ कहने ही वाले थे कि सन्तोषकुमार पर फिर से भूत सवार हो गया और इसके पहले कि कोई उसे रोक पाता, उसने रामबाबू के स्लीपर उठाकर मनोहर बाबू पर चार-पांच झाड़ दिये। बोला—"बेटा कुछ समाज सेवा का पुरस्कार भी तो लेते जाओ।"

रामबाबू मन-ही-मन बहुत खुश हुए, पर ऊपर से क्रोध दिखलाते हुए सन्तोषकुमार का हाथ पकड़ते हुए बोले—"छी-छी यह तुमने क्या किया। मनोहर बाबू का और हमारा खानदान एक है।" फिर मनोहर बाबू की तरफ मुड़ते हुए बोले—"भाई समाज सेवा में यह सब तो लगा ही रहता है, पर मुझे बड़ा अफसोस है कि मेरे घर में आपका इतना अपमान हुआ। मैं समझता हूं कि यह अपमान आपका नहीं बल्कि मेरा हुआ। मुझे बड़ा ही दुःख है। मैं तुमसे माफी मांगता हूं।" कहकर वे मनोहर बाबू को साथ लेकर बाहर चले गये, और वहां से उसे अपनी कार पर बैठा दिया। विदा लेते समय बोले—"इसमें सन्देह नहीं, कष्ट हुआ, पर समाज-सेवा से मुंह न मोड़ना।"

मनोहर बाबू खिन्न होकर बोले—"भली चलाई समाज सेवा की, मैं तो अब ऐसी बातों के करीब भी नहीं जाता। कई लोगों ने समझाया तब मैं यहां आया था।"

भौंहों पर बल लाते हुए रामबाबू बोले—"तो कुछ और लोगों ने आपको भेजा था?"

रामबाबू कार की खिड़की पकड़कर खड़े हो गए, और उन्होंने मनोहर बाबू से उन सारे लोगों के नाम पूछ लिए जिन्होंने सलाह करके मनोहर बाबू को भेजा था। गाड़ी भर से निकल गई,

 २१२ २१२

[illegible]

इकतीस

पता नहीं अभी कितनी रात बाकी थी। सब लोग कई दिनों के थके हुए गहरी नींद में सो रहे थे। केवल आकाश में तारे जाग रहे थे। ऐसे समय एकाएक रामबाबू की बहन सावित्री ने देखा कि सुकुमारी कराह रही है जैसे कोई उसका गला घोंट रहा हो। बत्ती जलाई, और सोचा कि सुकुमारी कोई बुरा स्वप्न देख रही होगी, उसे जगाने की चेष्टा की। पर कई धक्के देने पर भी जब वह नहीं जागी, तो वह घबड़ा गई, और रामबाबू को खबर दी। फौरन घर के अन्दर कुहराम मच गया। घर की सारी बत्तियां जलने लगीं मानो घर भी आंखें मलकर जाग गया हो। फौरन डाक्टर बुलाया गया।

सुकुमारी की आंखे स्थिर-सी हो रही थीं, मानो वे पत्थर की बनी हुई हों। बीच-बीच में एक कराहने की आवाज सुनाई पड़ रही थी, सांस कभी जल्दी-जल्दी पड़ती थी तो कभी धीरे-धीरे। यह स्पष्ट था कि उसे बहुत कष्ट हो रहा था, पर संज्ञाहीन होने के कारण वह कुछ कह न पा रही थी। सावित्री तथा उर्मिला

पास में बैठी डाक्टर की प्रतीक्षा कर रही थीं। इतने में सावित्री ने कहा—"भैया!"

रामबाबू बोले—"डाक्टर आ ही रहा होगा।"

"मैं डाक्टर को नहीं पूछ रही हूं, मैं यह कह रही हूं कि क्या डाक्टर के आने की कोई जरूरत है?"

रामबाबू जैसे कुछ सोचकर बोले—"जीवन बड़ा अद्भुत है बहन। इसलिए कब क्या हो कहा नहीं जा सकता। कल सन्तोष ने जो कुछ कहा वह तो मैं तुम्हें बता ही चुका हूं।"

"पर वह तो झूठ है।"

"यहां झूठ-सच को कौन देखता है। झूठ-सच तो केवल पुस्तकों में ही है। रोजमर्रे की दुनिया में यह पता ही नहीं लगता कि क्या सच है और क्या झूठ। मालूम होता है संख्या की इस प्रधानता के युगमें जिसे अधिकांश लोग मान लें, वही सच है, और जिसे कोई न माने या थोड़े लोग मानें वह झूठ है।"

न जाने किस समय सन्तोषकुमार भी वहां आकर खड़ा हो गया था। न तो किसी ने उसको रोका था, और न किसी ने उसको देखा था। वह एकाएक बीच में बोल पड़ा—"यह क्या बात है? सुकुमारी ने जहर खा लिया?"

रामबाबू ने संक्षेप में कहा—"हां।"

"क्यों?"

किसी ने इसका उत्तर नहीं दिया। यहां तक कि किसी ने एक-दूसरे की तरफ देखा भी नहीं। सन्तोषकुमार जिस प्रकार से आया था उसी प्रकार से चला गया। जब इस कमरे में बैठे हुए लोगों ने उसके उन्मत्त की तरह हंसी को रात्रि के अन्धकार को चीरते हुए अन्तरिक्ष में फैलते हुए सुना, तभी वे जान गये कि सन्तोषकुमार चला गया है। इतने में डाक्टर साहब आ गये, और वे फ़ौरन उपचार में जुट गये। पहले एक ही डाक्टर ने काम शुरू

किया, फिर दो-तीन डाक्टर और आ गये। न मालूम कौन-कौन से यंत्र भी उनके साथ आये और उपचार चलने लगा। सावित्री और उर्मिला वहीं बैठी रहीं, पर रामबाबू अपने कमरे में जाकर एक आरामकुर्सी पर चुपचाप लेट गये। वे अपनी चेष्टा से इतने धन के मालिक हुए थे, जीवन में बहुत ऊंच-नीच देखा था पर उनकी सबसे बड़ी प्राप्ति यह थी कि वे अपने में यह शक्ति रखते थे कि जब भी चाहें, अपने को चारों तरफ की परिस्थितियों खींचकर एकान्तवास करें। इस समय भी वे वैसा ही कर रहे थे। अधिक सोचने से क्या फायदा था। आखिर जिनका काम है, वे कर ही रहे थे। शहर में जो-जो बड़े डाक्टर थे सब तो आये हुए थे। उनके सोचने से होता ही क्या है। फिर वह इस विषय पर किसी राय पर पहुंच नहीं सके थे कि इस सम्बन्ध में क्या होना अच्छा है। अवश्य सन्तोषकुमार ने मनोहर बाबू से ऐसी बातें कह दी थीं जिससे लोक-लज्जावाला पहलू दब जाता था। पर न्याय, न्याय कहां जायगा? कितनी भारी गलती हुई कि कल उन्होंने उर्मिला और सावित्री को मनोहर बाबू के साथ सन्तोषकमार की जो बातचीत हुई थी, उसे बताया था, पर सुकुमारी को इसका कोई इंगित तक नहीं दिया गया।

रामबाबू अपने हिसाबों पर बहुत चलते थे। वे समझते थे कि जब सब सावधानी कर ली गई, तो दूसरा नतीजा कैसे होगा। पर इस सारी घटना से उनके इस विश्वास को बहुत ठेस लगी थी। थोड़े-से दिनों के अन्दर उन्होंने दो बार गलत हिसाब लगाए। पहली गलती तो यह थी कि डाक्टर शकुन्तला के काउन्टर के क्लर्क से ही उन्होंने सुकुमारी की शादी तय की। यदि वे डाक्टर शकुन्तला के यहाँ स्वयं जाते तो यह गलती नहीं हो सकती थी। पर उन्हें सन्तोषकुमार के पूर्व इतिहास को अच्छी तरह जान लेना चाहिये था। दूसरी गलती यह हुई कि

कल सुकुमारी को सन्तोषकुमार के नये रुख के सम्बन्ध में बताया नहीं गया।

खैर, रामबाबू ऐसे व्यक्ति थे जो गलतियों पर अधिक पछतानेवाले जीव नहीं थे। जो कुछ हो सकता था, वह तो हो ही रहा था। यही उनका दर्शनशास्त्र था। कई बार सन्तोषकुमार की हंसी सुनाई पड़ी। उन्हें एकाएक डर-सा हुआ। यह कौनसी बीमारी है? यह बेकार में हंसता क्यों है। रामबाबू ने एक नौकर को बुलाकर कहा—"सन्तोष बाबू हंस क्यों रहे हैं, क्या बात है?"

नौकर ने कहा—"हुजूर, कल मनोहर बाबू को मारने के बाद वे कई बार हंसते रहे, रात को हंसना बन्द था, पर जब से वह घर में हल्ला-गुल्ला सुन रहे हैं, तब से फिर हंस रहे हैं।"

रामबाबू चुप हो गये, और सोचने लगे। उन्हें परिस्थिति बड़ी अद्भुत मालूम होने लगी। सोचा—"यदि सुकुमारी मर गई तो फिर सन्तोषकुमार की खुशामद की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी, नहीं तो देखा जायगा।"

बत्तीस

सुकुमारी तो अच्छी हो गई, पर सन्तोषकुमार एकदम पागल हो गया। सन्तोषकुमार ने जिस समय सुकुमारी को म्रियमाण अवस्था में देखा था, और डाक्टर के लिये दौड़-धूप हो रही थी, उसी समय से वह अधिक हंसने लगा, और फिर पागल हो गया।

यद्यपि रामबाबू ने दिखाने को इस पर बड़ा दुःख प्रकट किया, पर वे मन-ही-मन खुश तो नहीं कहा जा सकता, आश्वस्त हुए। उनकी सारी शंकाओं का समाधान जो हो जाता था। पागल न तो कुछ कहता है, और यदि वह कुछ कहे तो उसको महत्व नहीं दिया जाता। पागल तो पागल ही है। वह न तो स्त्री को ग्रहण कर सकता और न उसे त्याग कर सकता है।

रामबाबू ने अपनी सारी प्रतिज्ञायें पूरी कीं। उन्होंने काशी में जो मकान मुनीमजी को देने के लिए कहा था, वह दे दिया। मुनीमजी उसी में सारे परिवार के साथ रहने लगे। सुकुमारी भी उनके साथ रहती थी। सन्तोषकुमार पागल तो हो ही गया था पर ऐसा पागल नहीं था जो नियंत्रण में न रह सके। इस

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] मजियाँवर्न होम? [illegible]

[illegible] नामों देखा [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] बात [illegible]